

प्रकाशक—

पद्माष्टाल पाकलीवाल

महामंत्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था

१ विश्वकोषट्टेन, बाबबाजार, कलकत्ता ।



मुद्रक—

श्रीजाल जैन वाक्यमीर्य

जैनसिद्धांत प्रकाशक पवित्र भेस,

१ विश्वकोषट्टेन, बाबबाजार
कलकत्ता ।

निवेदन ।

संस्थाके मूलसंस्थापक उम्मानाबादनिवासी श्रीमान् सेठ
नेमिचंद्र बालचंद्रजीने अपने पूज्य पिता गांधी कन्तूरचंद्रजीके
सुपुत्र, बालचंद्रजीके स्मरणार्थ दो हजार एक रुपया प्रदान किया
था और उसमे योगनाराजी वीरनिर्वाण संवत् २४४४ में प्रका-
शित हुये थे । बालकनमे इन प्रयकी आई न्योछावरसे यह
“धर्मशास्त्र” ग्रंथ लयाया गया है ।

[illegible]

[Faint handwritten notes at the bottom of the page]

ਮੀਲ ਲੈ ਜੀ:

प्रस्तावना ।



(प्रथम संस्करणकी)

प्राचीन समयके अनेक अधिगम प्रस्तावना (शास्त्र बनानेका काम व उद्देश) आजकलसे तबसे मंदी आयेमें न छिन्नकर हमके अन्तमें भवने कुछ परिवर्तनके रूपमें (प्रस्तावना) लिखने दे, इसकारण हम मूल मंदीके प्रस्तावना की मंदीपर लिखने प्राचीन सत्यदुष्टार पुष्टके अन्तमें लिखी है । परंतु आजकल प्रायः समस्त देशोंके विद्वान् मंदीके प्रस्तावना व अधिगमका उपलब्ध इतिहास मन्थन आदिमें ही लिखते हैं, और आजकलके पठकनग को प्रबलक प्रस्तावना नहीं पड़ लेते, तथाक मन्थके करनेमें आती तथे ही नहीं दिखाने इसकारण हम भी नयम मूल मन्थानुसारकी मन्थन (लिखने आदिताका कुछ परिवर्तन भी दे मूल उद्देश्य रखते हैं । तो पठक मद्रासियोंको चाहिए कि न देकर एक दो बार अवश्य ही पढ़ ले ।

विष्णुनाथानिधिनाम्नामी श्रीवीरसेनाऽननि सूरिवर्यः ।
 श्रीमाधुराया परिमिता वरिष्ठ कथावधिष्वसनिधौ पट्टिष्ठः ॥ १ ॥
 ध्वस्ताशेषान्त्वयुन्निमदस्या तस्मात्सूरिर्वैद्यसेनाऽननिष्ठः ॥ लोको-
 योनी पुण्यशलादिवाकं निष्ठाभीष्ट द्येयसाऽवास्तदायः ॥ २ ॥
 भासिनामिजगदर्थसमूहा निर्मलाऽमितगतिगणनायः ॥ वासरो
 दिनमद्योरेव तस्माद्वायते स कमलाकरबोधी ॥ ३ ॥ नेमिपेणग-
 नायकस्वतः पावन वृषमधिष्ठितो विष्णुः ॥ पावतोपतिरिवास्तवमयो

[illegible]

१५ ॥ सतसकदाकलाद्वा प्राप्नोते तेन कीर्तिशुभमंतमनयं शुभ्यते
तेन तत्त्वं । हृदयसङ्गममध्ये धृतमिष्यान्धकारो जिनपतिमठदीपो
दीप्यते यस्य दीपः ॥ १६ ॥ यदनि पठति भक्त्या यः शृणोत्येक-
विधः स्वप्नसमयतत्त्वायेदि शास्त्रं पवित्रं । विदितसकलतत्त्वा-
केपलालोकनेष्टद्विदशमदितपादो पात्यसौ मोक्षजहमी ॥ १७ ॥
यमो जेतोऽपशिरो प्रभवन्तु भुवने सर्वदा शर्मदायी, शान्तिं प्राप्नोतु
लोको धरणिमयनिपाः न्यायतः पालयन्तु ॥ दत्त्वा यमोऽखिलं
यमनियमशरीः साधयो यान्तु सिद्धिं, विष्यस्ताशुरुषोधा निजदि-
तनिरता जन्तयः सन्तु सर्वे ॥ १८ ॥ यावत्सामरसोपितो कलनिधि-
दितप्यति पीर्याभुजिः मर्तारं सुषोभरा, हृतरथा मीनेक्षया वा-
हना ॥ नायन्तिपुनु नात्यमेनवनघ संगीनले कोयिर्द्वयमाधर्मवि-
धारकः, नृदिन स्याप्यापमान मुदा ॥ १९ ॥ मद्य-मराणां विगते
सदृशं समनसो विक्रमपारिप्लव ॥ २० ॥ निषिद्धान्यमन समातं
जिनेन्द्रधर्माभिनर्गन जायते २० दनि प्रनस्तय ॥

[illegible]

पवित्र धर्मके अधिष्ठाता विष्णु. पायेंतीनायके सरस कामदेवको नष्ट करने-
 वाले, मन बचन कायको बरामें करनेवाले, मुनि अश्विना धावक धाविकाके
 संघसे पूजित एक नेमिषेण नामक आचार्य हुए ॥ ४ ॥ उन नेमिषेण आ-
 चार्यके शिष्य, कोपनिबारी, रामदमधारी, प्रकपेताकर नम्रताका है रस
 जिनमें, मद (गर्व) को दलनेवाले, मुनियोंमें श्रेष्ठ, शमन कर दिया है
 मन्मथ जिन्होंने ऐसे एक माधवसेन नामा आचार्य हुए ॥ ५ ॥ उन
 माधवसेनाचार्यके शिष्योंमें श्रेष्ठ, निर्दोष ज्ञानके धारक शमितगति नामा
 चतुर शिष्यने धर्मकी परीक्षा करनेके लिए सबको शरणकर यह श्रेष्ठ
 धर्मपरीक्षा बन ई है ॥ ६ ॥ यह धर्मपरीक्षा सुप्त अन्वहने बनाई है ।
 इसमें जो कुछ विरुद्ध व कथ हो तो स्वपर शास्त्रको जाननेवाले शोध कर
 धारण करो । क्या ऊर्ची बुद्धिके धारक विद्वज्जन सारासारको समझकर
 तुमको ठोठ मर्त्य समूहका ही ग्रहण नहीं करते ? ॥ ७ ॥ "प्राचीन कविता
 ही सुखद व है नवान कविता सुखदायक नहीं" युद्धम नेकी इसप्रकार
 कदापि नहीं समझन च शिवा, धूलोका प्रावर्ष नग नये फल भते हैं
 जो कथ वे पड़िले वधके फलो मरीखे अष्ट व सिद्ध नहीं होने ॥ ८ ॥
 तथा कोई वहे कि ' पु. जीका छ'डकर पु. ोमे उपम हव यह ग्रन्थ
 ग्रहण करनेमें नहीं आ सकना सा यह कहना सा रक नहीं करोकि
 सुबोधम ' अथमम निकल हुआ नी. ' व महाभूम मनी विकता ॥ ९ ॥
 मने इन् पुस्तकमें जो अन्वयनके शास्त्रोंक विचार कर है, जो बुद्धिका
 गाव प्रकट करके कथका रक्षण नन नही कि है किन्तु जो धर्म शिव-
 सुखर दिनवला है केवलमय ठम धन ' रीत वानेके निमज ही
 यह परिश्रम कि. सा है ॥ १० ॥ 'वधु' यह देव भदिने तो मेरा कुछ न
 हरन नहीं कर लिए है, 'जिनेन्द ' नवानने मुझे कुछ दे नही है

जिसे भी ठेठ दूँदाही भाषामें होनेके कारण जैपुर पुस्तके रहनेवाले भाइयों की काम की है. इस कारण शोलापुर प्रांतस्य भाकमुज निवासी भेष्टिपर्व गांधी नाथारङ्गजीकी पूरनासे मैंने इस प्रयत्न समस्त देशवासीयोकी समझमें आजावे ऐसी सरल हिंदी भाषामें गद्यानुवाद किया है. सो यह भाषके समुच्च मौजूद है

पाठक महाशय ! यह काम मेरा प्रथम ही है क्योंकि आज तक किसी जैन ग्रन्थ के अनुवाद करने का छापस मेरा नहीं हुआ, और न मैं इतनी ताकत ही रखता हूँ, जो ऐसे प्राचीन महान् ग्रन्थों की भाषाहीन कर सकूँ, परन्तु प्रथम तो उक्त सेठ साहब की आशय प्रेरणा हुई कि—यदि तुम अमेरिका का भाषानुवाद न्याय करके छपाओ तो आने वाले देश की विद्वत्प्रतिष्ठामें हमारी इच्छानुसार गण्यता ही प्राप्त हो सकेगी। क्योंकि हमारे देशमें अनेक जैनीभाइ जैनप्रभय न्यून होना, जोकरा मनीष भ्रष्टानी होते आते हैं, जो इसका प्रचार करनेमें उनका बड़ा रुकावट है। हमारे उपर्युक्त प्रयोगे सिद्ध हो एक अच्छे नमूने का प्रकाश होकर सब लोग इस विचारों हम हमसे प्रभावित होकर ही जायेंगे हमारे अंग्रेज, पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा प्रकाशित होकर ही जायेंगे, इस कारण, इस कार्यमें स्वयं जैन प्रभय, जहाँ तक हो सके दुई मर्यादा अनु

विषय, कोपना व कुछ कोपना योग्य सुसह्य कार्य का अनुष्ठान करने के लिये
 गये हैं। जो घराने योग्य हैं मूल के विषय मायातु बाद में भी अनुचित रह
 गई होगी, वस्तु क्या किया जाय मायातु दे १३ महीने तक मेरे नाम से हो
 जाने के कारण लाया पीछे इतनी कोपना की गई, जो सब मायातु क्षमा करे।
 और इस मुद्रका मकर ही एक दो बार स्वागत कर जायें ऐसी सुखी
 प्रार्थना है ।

मुम्बई
 सं. १९५७
 वि. माप सुती १.

जैनी मायातु का दण,
 पद्मालाल दा. दि. मैत्र.





श्रीचीतरागाय नमः

धर्मपरीक्षा भाषा ।



दोहा ।

पंचपरमपद बंदि कर, धर्म परीक्षा ग्रन्थ ॥

लिखूं वचनिकामय सरल, जो शिवपुरका पन्थ ॥ १ ॥

जिनके ज्ञानरूपी दीपकने तीन वातबलयरूपी छतंग
मनोहर काटवाले इस जगत्‌रूपी गृहको चारों तरफसे उद्योत
रूप किया; वे तीर्थंकर भगवान हमारे कल्पाण्णरूपी लक्ष्मीके
कारणरूप हैं ॥ १ ॥ सपरत कर्मोंके नाश होनेपर अतिप-
वित्र प्रगट हुये निजम्बस्वरूपको प्राप्त होकर जो तीन लोकमें
शिरार्याणि भूत होते हैं, वे सिद्ध भगवान मेरी मुक्तिकेलिये
कारणभूत हैं ॥ २ ॥ जिनके वचनरूपी किरणोंसे भव्यपु-
रुषोंके मनरूपी कमल एकवार प्रफुल्लित होकर फिर निद्राको
(संकोचभावका) नाश नहीं होने, और जो दोषोंके उदयको
ही नहीं हान देते अर्थात् नष्ट कर देते हैं, वे आचार्योंमें
सूर्यमयान आचार्यपरमेष्ठी मेरी चर्याको निर्दोष करो ॥ ३ ॥
जैसे भक्तिमान पुत्रको मातापिता धनादिक सम्पत्तियें प्र-

रूप ही प्रकार हो जाता है ॥ २० ॥ इस भरत क्षेत्रके मध्य
 अनेक रमणीय स्थानोंकर संपुक्त पूर्वके समुद्र तटसे लेकर
 पश्चिम समुद्रके तट पर्यन्त लम्बा (यहाँ तक चक्रवर्तीकी
 आधी विजय होनेके कारण) वयार्य नामका धारक विज-
 यार्द्ध नामा पर्वत है, सो कैसा शोभता है कि पानों अपना
 देह पसारकर जेप नाग ही पड़ा है ॥ २१ ॥ वह विजयार्द्ध
 इतनी हुई अगनी किरणोंके समूहसे नाश किया है महा
 अन्धकार जिनने ऐसा प्रकाशमान होता हुआ पृथिवीको भे-
 दकर निकले हुये दूसरे सूर्यके सदृश शोभाको प्राप्त हो
 रहा है ॥ २२ ॥ इस विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर और दक्षिण
 तरफ विद्याधरोंकर सेवनीय दो श्रेणी हैं, सो कैसी हैं कि
 श्रवण करने योग्य मनोहर हैं गीत जिनके ऐसे, भ्रमणोंकर
 मन्त्रिण इत्यादि दोनों गण्डस्थलापर माना बदरेखा ही है
 ॥ २३ ॥ उनमेंसे दक्षिण श्रेणापर ५० और उत्तर श्रेणी-
 पर ६० इसप्रकार ११० निद्राँष कातिवाले विद्याधरोंके
 नगर द्वादशांगके ज्ञाना गणधर भगवान् ने कहे हैं ॥ २४ ॥
 सो यह उत्तम विजयार्द्ध पर्वत विचित्र प्रकारके पात्र (पूज्य
 पुरुष) कटक (सेना) और रत्नोंके स्वजानोंकर प्रकाशमान
 देव भर विद्याधरोंकर सेवनीय है चरण जिसके ऐसे चक्र-
 वर्ति राजा समान शोभता है ॥ २५ ॥ उसपर मिद्धवर वृष्ट
 के अकृत्रिम वेद्यालयोंमें विराजमान, जितेन्द्र भगवान् के अकृ-
 त्रिम प्रतिबिम्ब सेवन किये हुये भक्त्यपूरुषोंके दुःखोंको, शान्तको

11

12

13

14

15

समान शोभती थी ॥ ४१ ॥ चितवन करते ही प्राप्त
 हैं मनोहर भोग जिसकी ऐसा, वह जितशत्रु राजा उस वा-
 युवेगाके साथ रमता हुआ शचीके साथ इन्द्र तथा रतिके
 साथ कामकी तरह समय बिताता था ॥ ४२ ॥ सो वह
 तन्वी उस विद्याधरोंके राजा द्वारा सेवन की हुई, प्रशंसनी-
 य है पैग जिसका, महा उदयरूप, शोकको दूर करनेवाले,
 नातिकी तरह प्रार्थना करने योग्य मनोवैग नाथा पुत्रको ज-
 नती हुई ॥ ४३ ॥ सो अपने कलाके समूहसे चन्द्रपाकी
 तरह नष्ट किया है अन्धकार जिसने ऐसा, निर्मल चरित्र-
 वाला वह कुमार दिनोदिन अपने निर्मल गुणप्रमूहके साथ
 साथ बढ़ता हुआ । ४४ ॥ जैसे लक्ष्मीका (रत्नोंका)
 प्र. म्पिर गंगा, समुद्र अपनी लहरोंमें नदियोंको प्रदण
 करता है तैसे वह कुमार ने अपनी निर्मल बुद्धिसे राजा-
 ओकी चार प्रकारकी विद्याये प्रदण करना हुआ ॥ ४५ ॥
 पर परानुभाव कुमार वाक्यावस्थामें ही हर्नान्त महागलोंके
 उरणकालोका भोग, जितेन्द्र भगवानके वाक्यामृतके शान
 में पुष्टि पर्वचन जैनधर्मके अनुगामी, पूजनीय बुद्धिका
 धारक था ४६ । बनन्त है सुख जिसमें ऐसी
 परमपूज्य सिद्ध बुद्धी अंग ही बल करनेमें समर्थ, भव-
 रूपी दावानलकी जलके समान ऐसे धारिक ६ मयस्वरूपी
 रत्नको वह कबार बरण करना हुआ ॥ ४७ ॥ हम सुच-
 तुर मनोवैगक मनवाञ्छित काम्यकी सिद्धि करनेवाला वि-

बड़ा एक अजगर देखा ॥ ९ ॥ फिर क्या देखा कि उस
 सरस्वती जड़की एक स्वेत और काला दो भूत निरन्तर
 काट रहे हैं, जैसे शुक्लपद्म और कृष्णपद्म मनुष्यों भा-
 युको काटते हैं ॥ १० ॥ इसके सिवाय उस कृष्ण चार कपा-
 यकी समान बहुत लम्बे २ जति भयानक चलते फिरते
 चारों दिशाओंमें चार सर्प देखे ॥ ११ ॥ उन्हीं समय उस
 द्वापाने क्रोधित होकर संयमकी असंयमकी तरह कृष्ण तट-
 पर रुड़े हुये उसको पकड़कर जोगते हिलाया ॥ १२ ॥ सो
 उसके डिलनेसे उसपर जो मधुनक्षत्रियोंका छत्ता या उसनेसे
 समस्त पक्षियों निकल कर दुःसह वेदनाओंके समान उस
 पथिकक जर्जरण चिरत गई ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों
 नरक भेदों पाँडा देनेवाला उन मधु पक्षियोंसे घिरा
 हवा अग्निद्वय दुःखित हो उग्रिको देखने लगा ॥ १४ ॥
 सो उसकी नरक मुखको उठाकर देखने ही उनके होठों पर
 बहुत छटा पड़ मधुका चिन्दु आ गया ॥ १५ ॥ सो वह
 मूर्ख उस नरककी बाधा में भी अधिक बाधाको कुछ भी दुःख
 न समझ उस मधुविदुके स्वादको लेता हुआ अग्निनेको महा
 सुखा देने लगा ॥ १६ ॥ इस कारण वह अथवा पथिक
 उन समस्त दुःखोंको भूलकर उस मधुका एक स्वाद में ही
 आशक्त हो ॥ फिर मधुविदुके रहनेकी अभिलाषा करना
 हुआ लज्जता रहा ॥ १७ ॥ सो हे भाई ! उस समय पथि-
 कके जिनना सुख दुःख के इतना ही सुख दुःख पक्षियों

■

「

」

बड़ा एक अजगर देखा ॥ ९ ॥ फिर क्या देखा कि उस
 सरस्वतीकी जड़को एक स्वेत और काला दो मूसे निरन्तर
 काट रहे हैं, जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मनुष्यकी आ-
 युको काटते हैं ॥ १० ॥ इसके सिवाय उस कूपमें चार कपा-
 यकी समान बहुत लम्बे २ अति मयानक चलते फिरते
 चारों दिशाओंमें चार सर्प देखे ॥ ११ ॥ उसी समय उस
 हाथीने क्रोधित होकर संयमकी असंयमकी तरह कूपके तट-
 पर खड़े हुये वृक्षको पकड़कर जोरसे हिलाया ॥ १२ ॥ सो
 उसके हिलनेसे उसपर जो मधुमक्खियोंका छूँचा या उसमेंसे
 समस्त मक्खियों निकल कर दुःसह वेदनाओंके समान उस
 पथिकक शरीरपर चिपट गई ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों
 तरफ धर्मभेदा पाँहा देनेवाली उन मधु मक्खियोंसे घिरा
 हुआ अनिश्चय दुःखित हो उषरको देखने लगा ॥ १४ ॥
 सो वृक्षकी तरफ मुखको उठाकर देखते ही उसके दोटों पर
 बहते लाला एक मधुका बिन्दु आ पड़ा ॥ १५ ॥ सो वह
 मुख उस तरफकी बाधामें भी अधिक बाधाको कृच्छ्र भी दुःख
 न मुक्त उस मधुबिन्दुके स्वादको लेना हुआ अपनेको महा
 सुखी मानने लगा ॥ १६ ॥ इस कारण वह अथवा पथिक
 उस समस्त दुःखोंको भूलकर उस मधुकणके स्वादमें ही
 गाशक्त हो फिर मधुबिन्दुके पढ़नेकी अभिलाषा करना
 हुआ लटकना रहा ॥ १७ ॥ सो हे भाई ! उस समय पथि-
 कके जितना सुख दुःख है उनका ही मुख दुःख पड़ाकणों

का फल जानकर बुद्धिमान पुरुष धर्मको सर्वथा त्या-
 ग करके धर्मावरण ही करते रहते हैं और ॥ ४१ ॥ नीच
 ते जो कुछ कर्म करते हैं सो एक इसी जन्मके लिये
 करते हैं, जिससे वे लाखों भवोंमें अनैक प्रकारके दुःख पाते
 ॥ ४४ ॥ अमल दुःखोंको घटानेवाले विषयरूपी मदिरा-
 मोहित हुये कुटिलजन आजकलके दो दिन मात्रके जी-
 वमें भी पापकार्योंको करते हैं ॥ ४५ ॥ इस लक्ष्मणुर
 सामें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो सुखदायक, साय-
 ननेवाला, पवित्र स्वार्थीन और अविनाशक हो ॥ ४६ ॥
 क्योंकि नरक अवस्था है जो तो जरूर ग्रसित है, आयु है
 जो मृत्युदर और नश्यद है सो विपदाकर ग्रन्थ है, निरु-
 द्ध है जो एक मात्र पुरुषोंकी लुप्ता ही है ॥ ४७ ॥ यह
 लक्षण चाहे परवतपर चढ़े, चाहे पानालमें पड़ जावे, चाहे
 धिक्का पात्रमें भ्रमण करने लगे अन्त काल मृत्यु । तो
 उदा ना नही लोहना ॥ ४८ ॥ आते हुए वातरूपी मदा-
 यक्त हस्तोंका शिकनेके लिए मज्जन, माता, पिता, भ्रातृ-
 बहन, भाई पुत्र बर्गगृह कोई भी मर्य नहीं है ॥ ४९ ॥
 फालरूपी गक्षसकर भक्षण करने हय जावकी रक्षा करने
 ही हस्तों गोहा, गय, पयादा, इनकर अतिपूछ चार प्रका-
 रकी सेन भी समर्थ नहीं है ॥ ५० ॥ कुम्भि हवा यमरूपी
 सप, दान, पूजा, मिताहार, व उनादर तप पत्र मन्त्र और
 समापनो करके ना निवारण करना अशक्य है ॥ ५१ ॥



वचन बोलनेवालोंके, अदत्त ग्रहण न करनेवालोंके, रास-
सीकी तरह स्त्रीका त्याग करनेवालोंके ॥ ७७ ॥ परिग्रह
तजनेवाले धीरे वीरोंके, संतोषामृत पानेवालोंके, वात्सल्य
धर्मसे प्रीति के धारण करनेवालोंके और विनयी पुरुषोंके
ही पवित्र धर्म होता है ॥ ७८ ॥ जो कोई जिनेंद्रभगवानकर
भाषित धर्मको चित्तसे भावना करता है सो महा दुःखदायक
संसाररूपी दावानलको शीघ्र ही शमन कर देता है ॥ ७९ ॥

योगिराजके इस प्रकार धर्मोपदेशामृतसे समस्त सभा
ऐसी ठस हो गई कि जैसे मेढके जलमें तप्तायमान पृथिवी
शीतल हो जाती है ॥ ८० ॥ अवधिज्ञान है नेत्र जिनके,
वात्सल्य वाचमें कुशल, ऐसे वे योगिराजधर्मो देश दे चुके
तब मन्त्रावेगको जितशत्रुका पुत्र जान कर निम्नलि-
खित भवान्ने कुशल सन्नाचर पूछो हुये, क्योंकि ध-
र्मान्ने पुरुषाना मा नव्य पुरुषोंके लिये पक्षपात होता है
॥ ८१ ॥ हे भद्र ! तुम्हारा भक्तान्ने, परिवारभक्षित
धर्मवाच्योन्ने लक्ष्य कुशलमें पा है . . . इन प्रश्नको सुन
कर विद्याधरका पुत्र मन्त्रावेग प्र कर्त्तव्य हो कर इस प्रकार
बहना हुआ ॥ ८२ ॥ कि हे भगवन ! जिसकी रक्षा मदा
का है आने चरणारविन्द करते हैं, उस विद्याधरान्ने जि-
तशत्रुके विमप्रकार विघ्न हो सके हैं ? क्योंकि जिसकी रक्षा
साक्षान् गरुडराज करते हैं, उमको किसी कालमें भी सर्पका
पीटा नहि हो सकी ॥ ८३ ॥ इसप्रकार कहके मस्तकपर

देखा ॥ ६ ॥ तब घबराकर तेरे पिता पितामहको जाकर
 पूछा, सो ठीकही है. इष्ट संयोगकी बांछा करनेवाला क्या
 नहि करता ? सब कुछ करना है ॥ ७ ॥ जब इस प्रकार
 सर्वत्र पृच्छते पर भी तेरा पता न लगा तब देवयोगसे इधर
 आते हुये तुम्हें देखा ॥ ८ ॥ हे मित्र ! जैसे संयमी संतो-
 पको छोड़कर स्पेच्छाचारी हो इधर उधर भटकते हैं, वैसे
 तुम्हें आनन्द उपजानेमें समर्थ, तथा तेरे वियोग सहनेको
 असमर्थ ऐसे मुझ मित्रको छोड़कर तू किस प्रकार फिरता
 है ? ॥ ९ ॥ हे मित्र ! पवन और अग्निकी समान अपने
 दोनोंके स्थिति रहता है. इसलिये यह मित्रता केवल
 दिवस तक कयोकि ॥ १० ॥ जिनके देह और आ-
 त्माक तत्त्व जन्ममरणपर्यन्त भिन्न नहीं होय,
 उनकी मित्रता सर्वोत्तम है ॥ ११ ॥ एक तो उष्ण और
 एक तो शीत ऐसे मृदु और चन्द्रम की प्रति कर्मी ? जो
 महीन एकद्वार मिल गयो ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंकी ऐसी
 मित्रता मनोहर कालत्र तथा वरन प्राप्तिसे जा मित्रताका
 तरह किसे कहेंगी पर धीन न होय ॥ १३ ॥ उन्हींकी
 मित्रता प्रशंसनीय है कि जो दिन और रातकी भिन्नता
 मन्तर अक्षरभित्त पर भेदभावगहित पत्र रहते हैं ॥ १४ ॥
 जो मित्रके ज्ञान होने पर क्षीण होता है और बुद्धि होनेपर
 वृद्धिरूप होता है उसको अच्छा मित्र कहते हैं और वे ही
 भक्तसन्तान हैं. जैसे समुद्रके साथ चन्द्रमाकी मित्रता है. ॥

अपने घरको चले गये. कैसे हैं कि नकारमान है शोभा जिस-
की सो मानो उत्साह और नय दोनो एक ही रूा हो रहे हैं ॥
अपने घर पहुंच कर स्नेहसे बसोभूत है चित्त जिसका ऐसे वे
दोनों मित्र मिलकर साथ २ बीमे बैठे और सोये क्योंकि
स्नेहों पुरुष एक क्षण भी वियोग नहीं सह सके ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अपनी इच्छानुसार गहन करने-
वाले विमान पर चढ़के वे दोनों मित्र दिव्य मनोहर वस्त्रा-
भूषण पहन कर अष्टाकारके धारक देवोंके समान पटने नगर
की तरफ चल दिये ॥ ४४ ॥ सो वहांसे चल कर शीघ्र ही
अनेक प्रकार आश्चर्योंमें भरे हुये मन वांछित उम पुष्प-
चन कटिये पटने नगरको प्राप्त हुये ॥ ४५ ॥ वहां पहुंच कर
मनवांछित फल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंमें भरे हुये
पटने नगरके एक उद्यानमें (व गमें) नन्दन वनमें देवोंकी
समान उत्तम हये ॥ ४६ ॥ उन बागके मरम्भ वृक्ष पु-
ष्पोंके गच्छंमोस्तनोका नम्राभूत वनमें बैठे व हुये का-
मिनी मर्दित कानी पुरुषकी तरह शोभने थे ।- ७ । वहा उत्तर
कर मनोवैगने पवनवैगने कहा कि यदि तुमको वास्तवमें
कौतुक देखनेकी उत्कंठ है तो जिस प्रकार मैं रहू, उसी
तरी करने पर तुमारी इच्छा पूर्ण होगी ॥ ४८ ॥ यह म-
नोवैगका वचन सुनकर पवनवैगने कहा कि हे महामने ! तू
किमी प्रकारकी शंका मन कर, जिस प्रकार तू रहेगा उम
प्रकार करनेकी मैं तयार हूँ ॥ ४९ ॥ हे मित्र ! तेरे कहे हये

किसी कारणसे इस प्रकार भगद हुये भ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५८ ॥ कईएक भले आदमी कहने लगे कि, अपने प-
राई चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि जो लोग पराई
चिन्तामें लगते हैं उनको सिवाय पापबन्धके कुछ भी फल
नहीं होता ॥ ५९ ॥ स्फुरायमान हैं कांति जिनकी ऐसे इन
दोनों मित्रोंको देखकर कितनीएक नगरकी स्त्रियें कामदेवके
वशीभूत हो अपने २ कार्यको छोड़कर शोभको प्राप्त हो
गई ॥ ६० ॥ कितनीयक स्त्रियें तो इस प्रकार कहती हुई
कि, जगनमें कामदेव एक है ऐसी प्रसिद्धि है परन्तु उस प्र-
सिद्धिको प्रत्यक्षतया असत्य करनेकेलिये ही मानो कामदे-
वने दो देह धारण करी हैं ॥ ६१ ॥ कोई स्त्री कहती हुई
कि, ऐसी असाधारण शोभाके धारक महा रूपवान् पुरुष
तृणकाष्ठके बेचनेवाले मैंने तो कभी नहीं देखे ॥ ६२ ॥

अन्य कोई स्त्री कामसे पीडित हो उनमें वचनालाप
करनेकी इच्छा कर अपनी सखीसे कहती हुई कि, हे सखी,
इन तृणकाष्ठके बेचनेवालोंको शीघ्र ही यहांपर ले आव ॥
ये जितने मूल्यमें तृणकाष्ठ देंगे उतनेमें ही ले लूंगी. क्यों
कि इष्ट जनोंसे वस्तुकी प्राप्तिमें किसी प्रकारकी गणना
नहीं की जाती ॥ ६४ ॥ इस प्रकार नगरनिवासियोंके वचन
सुनते २ सुन्दर शरीरके धारक ये दोनों मित्र सुवर्णका है
सिंहासन जिसमें ऐसी ब्रह्मशालामें (बादशालामें) पहुंच
गये और ॥ ६५ ॥ तृणकाष्ठके भारको ढालकर बड़े जोरसे

किसीमें असंभव है।" इसप्रकार कहकर भक्तिके भारसे न-
 म्रिभू हो नमस्कार करने लगे, सो ठीकही है विभ्रवरू-
 हो गई है बुद्धि जिनकी उनसे प्रशंसनीय कार्य कदापि नहीं
 होता ॥ ७५-७६ ॥ कोई २ इसप्रकार कहते हुये कि नि-
 श्चय करके यह पुण्ड्र कहिये इन्द्र ही है, क्यों कि जगत्को
 महानन्ददायिनी कान्ति अन्य किसीके नहीं हो सकती ७७
 कोई महाशय कहने लगे कि ये अपने तीमरे नेत्रको ग्रहण
 करके पृथिवी देखनेके लिये महादेवजी आये हैं क्यों कि
 ऐसा रूप सिवाय महादेवजीके अन्य किसीका नहीं हो सका
 ॥ ७८ ॥ अन्य कोई महाशय कहते हुये कि यह कोई महा-
 उद्धत विद्याधर है सो पृथिवीका देखता हुआ अनेक प्रकार-
 की लाला (काड़ा) जगता फिरता है ॥ ७९ ॥ इसप्रकार विचार
 करते हुये भी वे सब नमस्कार पूजन किया है दशदिशाओंको
 जिसने ऐसे विश्वरूपमणिके नभान उभयनाभमणिका कुछ भी
 निगम नहीं कर सके कि यह कौन है ॥ ८० ॥ तब किसी
 एक प्रवीण ब्राह्मणने इसप्रकार कहा कि निश्चय करनेकेलिये
 इसका क्यों न पूछ लो ? वगे कि बुद्धिमान पुरुष दायमें
 बैठे रहने आगली दर्पण में आदर नहीं करते ॥ ८१ ॥
 यदि यह ब्रह्म करनेका आया है तो वादियोंका जीनेमें
 आसक्त है मन जिनका ऐसे हम समस्त नास्त्र और परमा-
 र्थके ज्ञाना इसके माय बाद करेंगे ॥ ८२ ॥ पंडितोंकर भरे
 हुये इस नगरमें पश्यशोभामेसे ऐसा कौनसा दर्शन है जिस-

महा ठग इस त्रिलोकीमें कोई भी नहीं दीखता ॥ ९० ॥
 इस प्रकारके वचन सुनकर वह मनोवेग विधाधर कहने
 लगा कि, हे विष ! तू ही क्यों कोप करते हो विनाकारण
 तो सर्प भी रोष नहीं करता; फिर विद्वज्जन तो करेंगे ही
 कैसे ॥ ९१ ॥ भो द्विजपुत्र ! इस सोनेके सिंहासनको बहुत
 मनोहर देखकर कौतुकसे बैठ गया और इसका शब्द आ-
 काशमें कहाँ तक होता है ऐसा विचार कर मैंने सहज ही इस
 दुंदुभिको बजा दिया ॥ ९२ ॥ हे भट्ट ! हम तृणकाष्ठवेचने
 वालोंके पुत्र हैं. वास्तवमें शास्त्रके मार्गको कुछ भी नहीं
 जानते; और 'वाद' ऐसा नाम तो मुझ निर्वुद्धिने अभी तेरे
 मुखसे ही जाना है ॥ ९३ ॥ भो ब्राह्मण, तुमारे भारतादि
 ग्रंथोंमें क्या मुझ सरीखे बहुतसे पुरुष नहीं हैं ? जगतमें लोग
 केवलमात्र परके दूषण ही देखते हैं. अपने दूषण कोई नहीं
 देखता ॥ ९४ ॥ यदि इस सिंहासनपर मेरे बैठनेसे तुमारे
 चित्तमें हानि है तो उतर जाऊंगा. इसप्रकार कह कर वह
 अप्रमाण ज्ञानका धारक मनोवेग आसनसे उतर कर नीचे
 बैठ गया. ॥ ९५ ॥

इति श्रीआचार्य अमितगतिकृत धर्मपरीक्षा संस्कृत
 ग्रन्थका बालावबोधनी भाषाटीकामें तीसरा
 परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ३ ॥

11

12

देशमें गया तो बांहर उसने विभाग की हुई चनोंकी बड़ी
 बड़ी अनेक राशियाँ देखी ॥ १० ॥ उनको देखकर वह
 मूढ़ विस्मित विचरते "अहो मैंने बड़ा आश्चर्य देखा,
 मैंने बड़ा आश्चर्य देखा " इस प्रकार कहने लगा. तब-११
 वहाँके आनखिने पूछा कि, तुने क्या आश्चर्य देखा ? तब
 उस मूढ़ने निम्न लिखित प्रकार कहा तो ठीक ही है मूर्ख
 लोग आली हुई भावनाको बाँह जानते ॥ १२ ॥ वह बोला
 जैसी इस देशमें चनोंकी राशियाँ (ढेर) हैं, इसी प्रकार
 हमारे देशमें निचोंकी राशियाँ हैं ॥ १३ ॥ यह सुनकर
 हसित हो आनखिने कहा कि, क्या तू बाहरोगतने मसित
 है ? जो ऐसा असत्य भाषण करता है ? ॥ १४ ॥ हे दुष्ट-
 दुष्ट, चनोंकी राशियोंके बराबर निचोंकी राशियाँ हमने
 किसी भी देशमें कभी नहीं देखी ॥ १५ ॥ " निश्चयक-
 रके इस चमत्काले देशमें निचोंके अत्यन्त दुष्साध्य हैं अतएव
 कम हैं तो क्या नरें इन चनोंकी गिनती निचोंके बराबर
 भी नहीं है । यह दुष्ट जान झुठकर हमलोंकी हंसी करना है"
 इस प्रकार मूर्खपणके भ्रमसे उसने कहा इनकी शीघ्र ही दंड
 दिया जावे ॥ १६-१७ ॥ तब आनखिने बचन सुनकर उसके
 डुलुबी जन (नौकर चाकर) उस मूर्खको बाँधते हुए सो उ-
 चित ही हैं. अश्रद्धेय बचनोंका बोझनेवाला क्यों नहीं बँडना ?
 ॥ १८ ॥ तब किसी दयावान सेवकने कहा कि, हे मूर्ख इसको इस
 अन्तरालके अनुसार ही दंड देना चाहिये ॥ १९ ॥ तब

जगत्को किस प्रकार ठगते ? ॥ २८ ॥ इसकारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिए कि प्रतीति योग्य वचन कहें । अन्यथा जो महती पीडा भोगनी पड़ती है उसको कोई निवार नहीं सक्ता ॥ २९ ॥ पुरुष सत्य भी कहें तो मूर्ख लोग नहीं मानते, इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको चाहिए कि मूर्खोंमें कदापि न बोलें, क्योंकि, ॥ ३० ॥ लोग तो अनुभवमें धाँई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध वार्त्ताको मानते हैं, इसकारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी नहीं बोलना चाहिए ॥ ३१ ॥ सो यहांपर निर्विचारोंके पथ्य बोलते मुझे भी बड़ी दोष प्राप्त होता है. इसकारण प्रगटतया मैं कुछ भी नहीं कह सकता क्योंकि, ॥ ३२ ॥ जो कोई पूर्वापरका विचार करे उसके आगे तो बोले, नहीं तो अन्यके आगे बुद्धिमानका बोलना योग्य नहीं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कह कर चुगरटनेके बाद एक द्विजामणाने कहा कि हे भद्र ! ऐसा मत कहो; हमारेमें ऐसा कोई भी अविचारी नहीं है ॥ ३४ ॥ ऐसा हरगिज मत समझ कि, अविचारी पुरुषोंका सा कार्य इन विचारवान् विद्वानोंसे होगा. क्योंकि मनुष्योंमें पशुओंका धर्म कभी नहीं होता ॥ ३५ ॥ जानीरदेश वालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ. क्योंकि, कव्वोंकी समान हंस नहीं होते हैं ॥ ३६ ॥ हे भद्र, तू किसी प्रकार का भय मत कर; यहां सपस्त ब्राह्मण चतुर हैं, योग्य व्योम्पके विचार करनेवाले विद्वान हैं. तेरा इच्छा हो सो

जगत्को किस प्रकार ढगते ? ॥ २८ ॥ इसकारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिए कि प्रतीति योग्य वचन कहै । अन्यथा जो मदती पीडा भोगनी पड़ती है उसको कोई निवार नहीं सक्ता ॥ २९ ॥ पुरुष सत्य भी कहै तो मूर्ख लोग नहीं मानते, इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको चाहिए कि मूर्खोंमें कदापि न बोलै, क्योंकि, ॥ ३० ॥ लोग तो अनुभवमें घाई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध बातोंको मानते हैं, इसकारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी नहीं बोलना चाहिए ॥ ३१ ॥ सो यहाँपर निर्विचानके पक्ष बोलने मुझे भी बड़ा दोष प्राप्त होता है, इसका गुण प्रगटनमें मैं कुछ भी नहीं कह सकता क्योंकि, ॥ ३२ ॥ जो कोई पुराणिक विचार करे उसके श्रमों में बोलै, नहीं तो अन्यत्र श्रमों बुद्धिगमका बोलना योग्य नहीं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कह कर चारहनेके बाद एक द्विजाग्रणीने कहा कि हे भद्र ! ऐसा मत करो, इसमें ऐसा कोई भी अविचारी नहीं है ॥ ३४ ॥ ऐसा रहिज मत समझ कि, अविचारी पुरुषोंकामा काय इन विचारवान् विद्वानोंमें होगा, क्योंकि मनुष्यमें पशुओंका धर्म कभी नहीं होता ॥ ३५ ॥ आनीन्देश बालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ क्योंकि, कालोंकी समान हम नहीं होते हैं ॥ ३६ ॥ हे भद्र ! तु किमी प्रकार का भय मत कर, यहाँ समस्त ब्राह्मण चतुर हैं, योग्य व्योग्यके विचार करनेवाले विद्वान् हैं, तेरा डरना ही मा

॥ अथ भक्त्युपायः ॥

[illegible]

जलती हुई अग्नि तो मैं सुखसे सह सकती हूँ परन्तु समस्त
 शरीरको ज्वालाप करनेवाले आगके वियोगको नहीं सह
 सकती ॥ ६५ ॥ हे विभो ! आगके सन्मुख अग्निमें प्रवेश कर
 मर जाना श्रेष्ठ है परन्तु आपके पीछे विरहरूपी शत्रुसे मारी
 जाऊँ सो भली नहीं ॥ ६६ ॥ हे नाथ, जैसे वनमें शरण र-
 हित मृगका मिट पारता है, उसी प्रकार आपके बिना यहाँ
 झकेलावा मुझे कामदेव मार डालेगा ॥ ६७ ॥ यदि आ-
 पका जन्म ही होना जावे, मेरा जीवन यमराजके घर
 जावे तो आपका मार्ग कल्याण रूप होवे ॥ ६८ ॥ इस
 प्रकार अपना प्रियार्थक वचन सुनकर वह ग्रामकूट कहने ल-
 गा कि हे भगलोचना ! ऐसा मन कर स्थिर होकर घरपर
 रह चरन्तरी डच्छा मन कर राजा बड़ा व्यभिचारी (पर
 काल तुम्हें ही तुम्हें देखने ही ग्रहण करलेगा इसकारण
 हे काम ! तुझे पर मरकर ही मैं जाऊँगा ॥ ७० ॥ राजाका
 स्वयंसे कि तुम्हसंग वा मनाहर स्त्रीको देखकर वह अ-
 वश्य लज्जित होता है सो उचित ही है कि जिसकी महान् द-
 म्भान्ता ! ऐसे स्त्रीरत्नको जान ला ॥ ७१ ॥ इस प-
 क्षात् अन्तः प्रियार्थक समझा कर और यनयान्वये भरेहुये
 वस्त्रों से ढाँपकर वह ग्रामकूट प्रति मेनारो भाग चला गया
 ॥ ७२ ॥ मगधाका ऐसा ही स्वभाव होता है कि वह मन
 वा छन वस्तुका प्रकर फिर किन्तीका भा विश्वास नहीं क-
 रता, यदि उस वस्तुका विश्वास हो जाय तो पण नक का

इच्छा करता है ॥७३॥ कुत्ता कुत्तीको पाकर उसे जगतमें समस्त वस्तुओंसे प्यारी समझता है. यद्यपि वह दीन है तो भी अपनी कुत्तीके छिनजानेके मगधे इन्द्रको भी भुषता है ॥ ७४ ॥ नीच कुत्ता कमिजाल और मलसे लिप्त नीरस पांसको पाकर अमृतको भी दुःस्वादु मानता है ॥ ७५ ॥ जो जिस वस्तुमें रत (मग्न) होता है वह उसकी रक्षा करता ही है जैसे कौवा विष्टाको मगध रक्के क्या सर्वे प-
कासमें रक्षा नहि करता ? ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार कुत्ता पशुके हाडको नष्ट करनेका समान समझ कर चढ़ता है उसी प्रकार जो एक पुरुष होता है वह अमृतपान को मग्न मानता है ॥ अतः जो जो पदार्थ चले जानेके पश्चात्त वह कुत्ता मानक मानता है ॥ अतः ता-
मके (पशु) पान निर्मल समान मानता है ॥ जो पाना दे करी अन्धकार में है ॥ ७७ ॥ जिसने दुर्चित्त पनारण निवृत्त पर्याप्त हाडों प्राप्त न कर सके व
हाडके भोजन चरु चरु दक इन सभी ॥ ७८ ॥ जो एक
दो कर निरुत्तम गठन नष्ट कर ॥ ७९ ॥ देह
भी सुखा न देता है ॥ ८० ॥ अतः अतः ॥ ८१ ॥ अतः
कौतुका कह है ॥ ८२ ॥ जो समस्त न ॥ ८३ ॥ अतः
॥ अतः पानाको समस्त नष्ट कर ॥ ८४ ॥ अतः
काटिया पाने दुष्ट को नहि छूटा ॥ ८५ ॥

लपने पायी पनबान्य बाप बल्लभ रहिन मृतोई। दगड़ी कर
 दिया ॥ ८२ ॥ शिम प्रकाश सिधुनी मौ बाराई कांरीके
 साध जहां नहां पतुगने करी शिखरी है उती प्रसार कर
 हुंसी कास प रित हो धरने योगे साध सर्वसाधामे नि-
 गेब दिखाने ली ॥ ८३ ॥ शिम प्रकाश सखन देन लोह-
 पर भवभीन जोर सांरी मरवेसीको छोटकर भाग लगे ई,
 लमी प्रकाश उम हुंसीके पंक्ति कासा गुनगर हमरे पागेने
 रहा लहा सखन धन हरगुहाके उने छोट दिया ॥ ८४ ॥
 लर बह भी लगने रंजना आगम नानका रहन पति-
 नका पेप धारनपूर्वक लहनायुक्त हो लगने परने सिधुनी
 हुई, लो लीति ही है क्यों कि पति आदिकसो पीता देना
 लो निमोका साधारणिक धर्म है ॥ ८५ ॥ हुंसीने इसप्रकार
 लगना पेप बनाया कि शिममे कोई भी पर नहि मरहे कि
 पर हुंसा (व्यभिचारी) है, लो पर ली इन्द्रो भी
 पोसा देकर मराना कर देती है लो मनुष्योंकी लो लगना
 ही क्या ? ॥ ८६ ॥ साधलिये है गतिरके सखन कार्य
 निमित्त पेना बह बहानपक लगती प्रियाके (हुंसीके)
 पान एक आदमीको मेजकर धार ग्रामसे बाहर पर इस
 लो विधान करने लगा ॥ ८७ ॥ उसने हुंसाके पान जा-
 कर नमस्कार पूर्वक कहा कि, है हुंसी ! तुमका प्रियरति
 आगया है, लो उसके लिये शीघ्रता कनेह प्रकारके भासन
 बनाओ, मुझे पर बात करनेके लिये ही उन्हांने पेना है
 ॥ ८८ ॥ पर सुनकर इस कुटिल मुंशाने कहा कि, तु

अपने घरको धनधान्य वस्त्र वर्तन रहित मूर्खोंकी बसती कर
 दिया ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार रितुवती गौ कागाल सांडोके
 साथ जहां तहां पशुर्ग करती विचरती है उसी प्रकार यह
 कुरंगी काम पंडित को अपने पारोंके साथ सर्वप्रकारसे निः-
 शंक विचरने ली ॥ ८३ ॥ जिस प्रकार समस्त घेर तोट-
 कर भगभीत घोर मार्गकी गडवेरीको तोटकर भाग जाते हैं,
 उसी प्रकार उस कुरंगीके पतिका भग्ना सुनकर उसके पारोंने
 रहा सदा समस्त धन हरणकारके उसे छोड़ दिया ॥ ८४ ॥
 तब यह भी अपने पतिका आगम जानकर उच्चम पतिव्र-
 ताका पेग धारणपूर्वक लज्जायुक्त हो अपने घरमें तिष्ठती
 हुई, सो नीति ही है क्यों कि पति आदिककी धोका देना
 तो स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म है ॥ ८५ ॥ कुरंगीने इसप्रकार
 ज्ञाना पेग बनाया कि जिससे कोई भी यह नदि समझे कि
 यह कुलटा (वृषभिवारिणी) है, सो यह स्त्री इन्द्रको भी
 धोका देकर भगानी कर देती है सो मनुष्योंकी तो गणना
 ही क्या ? ॥ ८६ ॥ साधलिये हैं वालिकके समस्त कार्य
 जिसने ऐसा यह वृद्धुधान्यक अपनी प्रियाके (कुरंगीके)
 पास एक आदमीको भेजकर आप ग्रामसे बाहर एक वृक्ष
 सले विधाय करने लगा ॥ ८७ ॥ उसने कुरंगीके पास जा-
 कर नमस्कार पूर्वक कहा कि, हे कुरंगी ! तुमारा प्रियपति
 आगया है, सो उसके लिये शीघ्र ही अनेक प्रकारके भोजन
 बनाओ, मुझे यह बात कहनेके लिये ही उन्हींने भेजा है
 ॥ ८८ ॥ यह सुनकर उस कुटिला मुखाने कहा कि, तु

इच्छा करता है ॥७३॥ कुत्ता कुर्षीको पाकर उसे जगमगे
समस्त वस्तुओंसे धारी समझता है. यद्यपि वह दीन है तो
भी अपनी कुर्सीके छिनगानेके भयसे इन्द्रको भी भुगत है
॥ ७४ ॥ नीच कुत्ता कर्मिजाळ और मलसे लिप्त नीरस
मांसको पाकर अमृतको भी दुःस्वादु मानता है. ॥७५॥
जो जिस वस्तुमें रत (मग्न) होता है वह उसकी रक्षा
करता ही है जैसे कौवा चिछाको संभाल करके क्या सर्व वं-
कारसे रक्षा नहीं करता ? ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार कुत्ता पशुके छालको रमापनकी समान
समझ कर चाटना है उसी प्रकार जो रक्त-मूर्छा होता है वह
अगुंदरको भी सुंदर मानता है ॥ अपने पत्रिको परदेस घने
जानेके पश्चात् वह कुरंगा कापके बसीभुन हो जाने जा-
रोंके (यात्रोंके) सात निःशंक रमने लगता, कैसे हैं वे जार
मानों दे:घारी अन्धाय ही हैं ॥ ७७ ॥ किन्तु हे इच्छित
मनोरथ तिमने ऐसी यह हुंती अपने मार्गको अनेक पं-
कारके भोजन बन्ध बना देकर देने लगी ॥ ७८ ॥ जो रक्त
हो वह निरालमे पावन पोषण की दृष्टि अपनी देहको
भी सवार २ के देता है ॥ उसका अपने द्रव्यादिक देनेमें
कौनसा कहें ? ॥ ७९ ॥ भा उमरक्ताने नौ दश दिनमें
ही अपने पागोंको समस्त वन जीतन देकर खुा पीके पूरा
कर दिया. वगैरे कुछ भी नहीं छोड़ा ॥८०॥ कायरही पा-
गोंसे पूरित है देह जिसकी ऐसी उम कुरंगाने नष्टबुद्धि होकर

जिन स्त्रियोंने अपने पतिको वशमें कर लिया है वे कोनसा
अपराध नहीं लगती ॥ १६ ॥

यह स्वभाव ही है कि दुष्ट स्त्री अपने आप दोष (अन्याय)
करके अपने उस दोषको छिपानेके अभिप्रायसे पतिपर
कोप किया करती है ॥ १७ ॥ कुटिल अभिप्रायवाली
स्त्रियें शोच विचारकर ऐसा वचन कहती हैं कि जिससे
बड़े २ बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है, अथवा
भ्रमरूपी चक्रमें गोता खाने लग जाती है ॥ १८ ॥ स्त्रि-
योंके मान होने (रूठ जाने) पर अवज्ञावस्यामें अन्यकर
करनेमें नहिं आये, ऐसी स्त्रीकी स्थिरताको भले प्रकार फ-
रनेके लिये रागीजन स्त्रियोंके किये हुये क्रोध मान व अं-
शा वगैरहको स्वभावसे ही सह लेते हैं ॥ १९ ॥ जो नीच
पुरुष रक्त होता है, वह स्त्री ज्यों ज्यों तिरस्कार करती
है, त्यों २ पंडितकी तरह उसके सन्मुख जाता है और ॥ २० ॥
वह विचित्र प्रभारके आश्चर्य करनेवाली स्त्री रक्तपुरुषको
क्रोधित करदेती है, और फिर क्रोधयुक्त किये हुये
पुरुषोंके मनको शीघ्र ही रंजायमान कर देती है ॥ २१ ॥
जिसप्रकार कर्मकार [लुहार] लोहेको बहुतसा ताप देकर
उसे तोड़ भी सकता है और जोड़ भी सकता है, उसीप्रकार
स्त्री भी प्रेमको तोड़ने और जोड़नेरूप दोनों कार्यमें समर्थ
होती है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार बिलाईके भयसे मृत्ता सिकुट
कर चुप हो बैठ जाता है, उसी प्रकार वह बहुधा न्यक कुरं-

गीके उपर्युक्त वचन सुनकर मन्ना (गंगा) दो बैठ गया ॥
 २३ ॥ स्वामिनी की शिखा का आताप तो सुप्त से महा जा सकता
 है, पान्तु सोयी भयकारिणी सुदृष्टी मदिन बर रहि गो
 काई भी नहि मर सक्ता ॥ २४ ॥ दोनों हाथ जोड़ कर
 वातांवा (प्रार्थना) की हुई भी दृष्टा कोषापदान
 पदाविपदा की गरिष्णी की तरह पटपटाती व चिल्लाती ही
 रहती है ॥ २५ ॥ दुर्नियार रोग की समान पुढों को निगल
 कष्ट देने वाली इस प्रकार की दुःखील (ग्योटे स्वभाव को पा-
 नेकारी) श्रिया पाके प्रभाव से ही होती हैं ॥ २६ ॥ इसी
 अवसर में " इ विनाशो पर भलहर भोजन की विष्ट " इस-
 प्रकार उसके पुत्रदाग प्रार्थनापूर्वक प्रकाने पर भी वह
 मूल विनाश की प्रधान पुत्र हा रहा वह— ॥ २७ ॥
 " नून पर वरा वल्लभ रवा है प्रपन्ना विपत्त पर जाकर
 वरा नहि प्राप्ति ॥ " इस प्रकार दुर्भाग्य पुत्र होने पर वह
 इसी वल्लभ भव न मुन्दान पर भज गया ॥ २८ ॥
 वही प्रपन्न है ॥ २९ ॥ मुन्दान पर भजने पर वह भिन्न भव
 जलने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३० ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३१ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३२ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३३ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३४ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३५ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३६ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३७ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३८ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ३९ ॥
 भव न मुन्दान पर भजने से भव न मुन्दान विपत्त पर भज गया ॥ ४० ॥

यह भाषण केवलमात्र गोबर ही खाकर अपनी बैठकमें जा
 बैठा और अपनी पिपाके क्रोधका कारण जाननेके लिये
 भाषणमें (ज्योतिष्यते) बोलने लगा ॥ ४९ ॥ कि हे भद्र !
 मेरी स्त्री मेरे घर कष्ट क्यों हो गई ? क्या निक्षयसे हमने
 कोई मेरा दुश्मन जान लिया है ? यदि तुम जानने दो
 तो कहो ॥ ५० ॥ उस वृद्ध ने कहा कि हे भद्र ! अपनी
 स्त्रीकी बात तो रहने दो, इसे पहिले जो मित्रियोंकी चेष्टायें
 हैं वे धोर्टामी कहना हूं मैं तु लो ॥ ५१ ॥ जगत्में ऐसा
 कोई भी दोष नहीं है जो मित्रियोंमें न हो क्योंकि ऐसा कौन
 सा अन्धकार है जो शत्रुमें नहीं भी नहीं हो ? ॥ ५२ ॥
 समुद्रके जलका परिमाण करना तो शक्य है परन्तु समस्त
 दापोंके खानि कर शत्रुके दापोंकी गिनती कदापि नहीं
 हो सकती ॥ ५३ ॥ दुश्मनके दाप देखनेमें चतुर द्विज
 कहिये एक ही बात कह बूढ़ कर्मा औरकी और कहने
 वाल मित्रोंका कष्ट भला जानमान नहीं होकर समान
 कदापि शत्रु नहीं होता ॥ ५४ ॥ यह स्त्री, कदा उपचार
 । चिकित्सा करत हूय भी अन्धन बुद्धिभय वेदनाका स
 रस जीवनका अय बर्तनेवाला है ॥ ५५ ॥ इधर उधर भ-
 रत हूय दापोंका परस्पर कर्म मिलाप नहीं होता या,
 हम वारण अन्धानोंने समस्त दोषोंको एकही जगह मिलाप
 करानेकी इच्छासे न जाना यह स्त्रीरूपी सभा घनाई है ५६
 जिसप्रकार जलका खानि नहीं है उसीप्रकार दुश्मनियोंकी

वस्त्री (धर) यह स्त्री है ॥ ५७ ॥ निःसंकार ये लोक
 उत्पन्न होनेमें पृथिवी कारण है उसी प्रकार भवचक्रों
 उत्पन्न करनेमें कारण स्त्री है तथा जैसी अंधकारकी खानि
 रात्रि है, उसी प्रकार दुर्नेषोंकी महा खानि भी है ॥ ५८ ॥
 यह स्त्री भवना स्वार्थ साधनेमें चौराहीकी समान है, जा-
 तापहरनेको अग्निकी सदृश है, इत्यादितामें अचल छा-
 याकी समान है और संव्याकी समान शगमात्र मेवकी प-
 रनेवाली है ॥ ५९ ॥ तथा कुचीकी समान अश्विघ्न नीच
 गुमापट करनेवाली, पापकर्मसे उपजी पतिन उच्छिष्टकी
 भक्षण करनेवाली है ॥ ६० ॥ दुर्लभ वस्तुमें शीघ्र ही रं-
 जायमान हो कर अपने स्वार्थीन वस्तुको छोड़नेवाली और
 महान घोर मादम करनेवाली न कभी दृग्गती और न शु-
 र्माती है तथा ॥ ६१ ॥ विजलीकी समान अस्थिर वायि-
 र्माकी समान मायमानेकी इच्छुक, पच्छीकी समान चाल
 और दुर्नितिकी समान दुःख देनेवाली है ॥ ६२ ॥ हे म-
 राजवा ! बहुत कहा नर कह ? तुमारे घरमें जो यह कुम्भी है
 इसको प्रपञ्चमें अपना गृह समझना ॥ ६३ ॥ हे भद्र !
 सम्यक् चात्रिकी समान दुर्नेष नेत्र समझ बन, इस कुर्ब-
 गाने अपने यार्गोका द्रव्य नष्ट कर दिया है ॥ ६४ ॥ जो
 स्त्री निर्भय विमल हो नेत्र धनका नष्ट करती है, वह दुरा-
 नया नेत्र जंघनका हरे वा इसे बान निवारण कर सका
 है ? ॥ ६५ ॥ तुम्हारे ही कुमार्गमें जानेका नथ्यात ऐसी

जाकर वह देता है वह और क्या नही करेगा ? अब
सब कुछ करेगा ॥७५॥ हे विमो ! इसप्रकार मैंने दुष्टविष-
वाले स्कंधरूप को सूचित किया, अब द्विष्टरूपका विधान
करता हूं सो सुनो ॥ ७६ ॥

२ । द्विष्टरूपकी कथा.

कोटी नगरमें स्कंध और बक्र नामके दो जमींदार कि-
सान रहते थे, उनमेंसे बक्र नामका किसान बड़ा बक्रपरिना-
मी था ॥ ७७ ॥ ये दोनों किसान एक ही मापकी चरई
सानेवाले थे, इसकारण दोनोंमें परस्पर बड़ा द्वेष (वैर)
हो गया, सो ठीक ही है क्यों कि जहां दो चार मनुष्योंके
एक ही द्रव्यकी अमिताया होती है वहांपर अवश्य ही वैर
हो जाता है ॥ ७८ ॥ प्रकाश चारनेवाले काक और निम्ब
अन्धकार चारनेवाले उल्लूकी तरह उन दोनोंमें स्वाभाविक
दुर्विचार वैर हो गया ॥ ७९ ॥ इनमेंसे बक्र नामक किसान
सदैव लोगोंका बड़ा दुःख देता था, सो नीति ही है कि
जिसने दोषवृद्धिपात्रण की, वह मनुष्य जिसको मुग्धदायक
होगा ? ॥ ८० ॥ एक समय बक्र राजद्वारा क्याचि (अ-
मात्यद्वारा) से कहा कि तू जा नीति ही है तू वा-
स्तविक रूप से सब बक्र करता है - वह यान्त्रिक दुःखको मान
नहीं लेता ॥ ८१ ॥ बक्रक पत्नी प्रत्यक्षा होनेपर भी
बक्र दुःख की किं दित नही और विद्वद् मन होकर
किसी वसे बक्रक पालक कहे कि जिससे मायको पालोकरके

सुखकी प्राप्ति हो ॥८२॥ परलोकमें एकपात्र सैकड़ों सुख-
दुःखका कर्ता अपना किया पुत्रा पुत्रपुत्रापरूप कर्म ही साथ
जाता है। पुत्र कलत्र धन्यधान्यादिमेंसे कोई भी साथ नहीं
जाता ॥ ८३ ॥ हे तूत ! अन्त रहित बड़े लंबे मार्गवाले
इस संसाररूपी घनमें सिवाय आत्माके अपना व पराया कोई
भी नहीं है इसकारण कुबुद्धि हो छोड़कर कोई हितकारी
कार्य करें ॥ ८४ ॥ मेरी सम्पत्तिमें तो आप मित्रपुत्रादिकसे
मोह छोड़कर ब्राह्मण और साधु जनोके अर्थ दानादिकका
दान दें और किसी इष्टदेवका स्तुति करें जिससे आपको
सुखदायक गतिकी प्राप्ति हो ॥ ८५ ॥

ये वचन सुनकर धर्मने कहा कि, हे पुत्र ! मेरा एक हित
रूप कार्य जो मैं कहता हूँ करे, क्योंकि जो सुपुत्र (सपूत)
होता है वह पिताके पूज्यवाक्यका उल्लंघन कदापि नहीं करता ॥
हे धर्म ! मेरे जीते जी तो यह स्कन्ध कदापि सुखी नहीं
हो सका, परन्तु हे पुत्र कुदृश्य सम्पत्ति सहित उमका वि-
नाश नहीं कर सका सो हे पुत्र ! यह निमनकार समूल स-
कुदृश्य नष्ट हो जाय ऐसा कोई उपाय करना, जिससे कि मैं
मनास शरीरको धारण कर प्रसन्नचित्तसे सदैवके लिये स्व-
र्गवास कर सकूँ ॥ ८६-८८ ॥ मेरी सम्पत्तिमें इसके लिये
यह उपाय रचना कि मेरे मरनेपर मेरी लाशको स्क-
न्धके खेतमें लजाकर लकड़ियोंके सहारे खुदा कर देना
तत्पश्चात् अपनी सम्पत्ति गो भेस धाँहोंको उसके खेतमें छो-

ददेना, जो ये उसके सेतका समस्त धान्य नष्ट कर दे-
 और तु किसी वृक्ष या घासकी ओटमें छिपकर देखते जाना
 जब स्कन्ध कुट्ट होकर मेरे दर पात (वार) करे तो उसी वृक्ष
 अथवा लोहोंको सुनानेके लिये बड़े जोरसे चिल्ला बठना कि,
 स्कन्धने मेरे पिताको मार डाला ॥ ८६-९० ॥ जब तु ई-
 सनकार करेगा तो राजा, स्कन्ध द्वारा मुझको मरा जान स्क-
 न्धको कुट्टम्ब सदित दण्ड देगा सम्पत्ति छीन लेगा तो यह
 स्कन्ध पुत्रवहित पराणको प्राप्त हो जायगा ॥ ९१ ॥ इस-
 कार महापापस्त्रवचन कहता २ बड़ बक पर गया और त-
 सके पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन किया सो जीति ही है
 कि पापकार्य करनेवालोंके महापक अनेक हो जाने हैं ॥ ९२ ॥
 जो दुष्ट मरता २ भी परको सुखी देवनेमें अधीर है, उस-
 को सिवाय निर्दयी यमराजके और कोन है जो दिनकी बात
 समझ सके ? ॥ ९३ ॥ ओ व्यास ! निष्पकार बकने
 अपने पुत्रके कहे हुये दिनचरनाको कुछ भी स्वीकार नहिं
 किया. सो उम बककी सदृश जो कोई तुव लोगमें निकृष्ट
 (दुष्ट) हो तो मैं दिनरूप वचन कहने लगता हूं ॥ ९४ ॥
 जो पुरुष पटा द्वेषरूपी अग्निमें दग्धहृदय है वे पराई चिन्ता
 के सिवाय न तो सुखसे ग्याने और न मोने और न पराई स-
 म्रतिको देख संतक अर्थानु वे दोना ही लाकपे निर्मल सु-
 खको नहिं पावे ॥ ९५ ॥ जो नीच निरन्तर द्विष्टचित रहते
 हैं और तुच्छ अज्ञानों पराई नमस्त्रिकां नहिं देख सके, वे

निरन्तर जलते हुये अन्तरहित नकरूपी अग्निकुंडमें चिरकाल तक रहना स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने द्विष्टस्वभावको नहीं छोड़ते ॥ ६६ ॥ जो मूढ़ हितवचनको छोड़कर हमेशह विपरीतिताको ही ग्रहण करता है, ऐसे दुष्टचित्तके संन्यस्त बहुमानो जन कुछ भी वचन नहीं कहते ॥ ९७ ॥

इति श्रीश्रमितागति आचार्यविरचित धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें पांचमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥

भो ब्राह्मणो ! तुमने अग्निकी समान तापकारी द्विष्ट-पुरुषकी कथा तो सुनी किन्तु अब पापाण समान नष्टबुद्धि मूढ़ पुरुषकी कथा सुनो ॥ १ ॥

३ । मूढ़पुरुषकी कथा ।

यशदेवोंके स्थानकी समान निधानका खजाना देवालयोंसे पूरित कंटोष्ठ नामका एक नगर था ॥ २ ॥ उसमें विप्रोंकर पूजनीय वेद वेदांगका पटी अर्थात् ब्रह्माके समान चार वेद ही हैं मुख्य जिसका ऐसा एक भूतमति नामका ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उस धीरचित्तके वेदादि पढ़ते २ पचास वर्ष तो बालब्रह्मचर्यास्थामें ही बीत गये ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् उसके बृद्धुर्मी जनोंने यशवी धर्म शिखाके समान उज्ज्वल नागायणके लक्ष्मीके समान यश नामकी कन्यासे विधिपूर्वक विवाह करा दिया ॥ ५ ॥ वह भूतमति उपाध्याय

7

8

9

10

ने कुछ भेंट देकर पुंडरीक नामक यज्ञ करानेके लिये पू-
 र्तिकों बुलाया। सो " हे यज्ञे ! परकी रक्षा करने हु-
 तू तों पाके भीतर सोया करना और इस बटुकको पौ-
 (दक्षर्षिज) में सुलाना " इस प्रकार कहकर वह भूतना-
 मधुगको चला गया ॥ २३—२४ ॥ अपने पतिके च-
 जानेपर उस पापिष्ठाने उस ब्राह्मणके लडकेको अपना ना-
 (पार) बना लिया। सो नीतिही है कि शून्य घरमें ब-
 गिचारिणी स्त्रियोंका बड़ा राज्य हो जाता है ॥ २५ ॥
 उन दोनोंके परस्पर दर्शन स्पर्शन और बारबार गुप्त अंगों
 के प्रकाशनेसे कामेच्छा, घृतके स्पर्शसे अग्निशिसाके स-
 मान शीघ्र ही तीव्रतया बढ़ गई ॥ २६ ॥ बहुधा समा-
 यकाकी स्त्रियोंके द्वारा समस्त पुरुषोंका मन हरा जाता
 सो तरुण व्यभिचारिणीके द्वारा तरुण व्यभिचारीका प्र-
 वर्षो नष्टि हरा जायेगा ? ॥ २७ ॥ उन्मादकाम्य बह बटुक
 इस यज्ञाके पीनस्तनोंसे पीड़ित होकर उसमें निरन्तर
 भोगता हुआ। सो नीति ही है कि, ऐसा मान पुरुष है, ज-
 ण्कातमें युवति स्त्रीकी पावर वैराग्यका प्राप्त हो जाय ?

जो विद्वान अपना हित चाहते हैं, उनको चाहिये कि इन क्षेत्र काल माघ युक्त अयुक्तमें तत्पर होकर सर्वथा विचारके काम किया करें ॥ ६० ॥ मनुष्य और पशुमें इतना ही भेद है कि मनुष्यको तो हिताहितका विचार होता है, और पशुको नहीं होता. इसकारण जो पुरुष विचारगदित हैं, वे पशुके तुल्य हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार पूर्वापर विचार रति आश्रयाधी मूर्खों को देने सूचित किया. अवशीरमूर्खकी कथा यही जानी है, सो सावधान होकर सुनो ॥ ६२ ॥

७ । कीरमूढकी कथा.

मसिद्ध छोड़कर नामक देशमें सामुद्रिक व्यापारका माता दलयात्रा करनेमें चतुर सागरदल नामका एक बणिक् था ॥ ६३ ॥ जो यह बणिक् एक समय जहाजपर चढ़कर नफ (नाके) मगर अहादिमें भरे हुए समुद्रमें पार होकर व्यापारार्थ बौल द्वीपमें पहुँचा ॥ ६४ ॥ उम बणिक्ने घग्मे चलने समय विनेश्वर की बर्णना सुमान सुगन्दनेमें बहुत दुःख देनी हुई एक गो भी अपने साथ ले जाया ॥ ६५ ॥ जो उम उरुवर चतुर बणिक्ने जो द्वीपमें गये तो ही कुछ भेट लेकर द्वीपक पर्वत - - - - - ॥ ६६ ॥ दूसरे दिन उम बणिक्ने - - - - - विचारनेवासी समुद्रका ममान बणिक्ने - - - - - , और - - - - - का बादशाहकी भेट करी ॥ ६७ ॥ क्योंकि उम देशमें



कैसे होगी, इसकी हृदि किस प्रकार होगी; इसप्रकार जो
 पुरुष भविसमय नहि विचारता, वह दोनों लोकमें दुःख ही
 भोगता है ॥ ८४ ॥ जो नीच पुरुष गर्वित आश्रय होकर
 अपने मनमें सारभूत विचारको स्थान नहि देता, वह उक्त
 बादशाहकी समान मानमर्दित हो, अपने कार्यकी नष्ट कर-
 ता है और वह बुद्धिमानोंके द्वारा त्यागने योग्य है ॥ ८५ ॥
 उस नष्टबुद्धि म्लेच्छराजाने उस गौको असह्य पीटा दी,
 तो ठीक ही है. मूर्खकी संगति करनेवाला भगवत्परा ध-
 निवार्य समस्त दोषोंको प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ इस संसा-
 रमें मूर्खताका समान तो कोई अंधकार नहि है और ज्ञान-
 के समान कोई प्रकाश नहि है. इसीप्रकार जन्ममरणके
 समान कोई शत्रु नहीं और मातृके समान कोई मित्र (बंधु)
 नहि है ॥ ८७ ॥ कदाचित्तु सूर्यव रत्ने अन्धकार हो जाय
 अथवा सूर्यम शाकल्य और चन्द्रमामं उष्णता हो जाय
 परन्तु मूर्खता बढाये बिना रहित नहि पायी ॥ ८८ ॥ सि-
 हादि विषजन्तोंसे पीड़ित बनम पशुना, मयराजका नवा
 बरता गया बध्नान्ममें जल जाता था ॥ ८९ ॥ परन्तु मूर्ख
 जन्म में अपनी क्षणिकता का अन्धकारन याग्य नहीं है ॥ ९० ॥
 जिनके वर अन्यत्र प्राप्त अन्य बरना दायर रहते हैं
 और जो अन्यत्र प्राप्त अन्य बरना दायर रहते हैं, दुर्दशा भोजन
 देना, - नवव शब्द हीना हवा है. इसीप्रकार मूर्खता
 देना ही उसकी गति ही हीना जाता है ॥ ९१ ॥ १६

1

2

3

4
5
6
7

वह दुःसाध्य आताप इन्धनसे अग्निकी समान उत्तरोत्तर ब-
 दने लगा ॥ ५३ ॥ अष्टमकारकी चिकित्सा जानते हुए
 भी वे वैद्य दुर्जनकी साधनामें सज्जनोंकी समान उस ताप-
 को शमन करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ५४ ॥ जब मन्त्रीने
 देखा कि राजाके शरीरमें ताप बढ़ता ही जाता है, तो उ-
 सने मथुरा नगरमें चारों तरफ घोषणा करी (दिंडोरा
 पीटा) कि जो कोई राजाके शरीरका दाह नष्ट कर देगा,
 उसको मान प्रतिष्ठाके साथ १०० गांव दिये जायेंगे ॥ ५५
 —५६ ॥ इसके सिवाय खास राजाके पहिरनेका उत्कृष्ट
 कंठा, अत्यंत दुलभ कटिमेखला और एक पोषाकका जोड़ा
 भी दिया जायगा ॥ ५७ ॥ यह घोषणा सुनकर एक व-
 णिक गोशर्प चन्दनकी लकड़ी लेनेके लिये घरसे बाहर
 हुवा. सो दैवयोगसे एक धोबीके हाथमें गोसीर चंदनका
 मूठा देखा ॥ ५८ ॥ उस वणिक्ने चारों तरफ उड़ते हुए
 भ्रमरके समूहसे वास्तवमें गोशीरचन्दनका समझ धोबीसे
 पूछा कि, हे भद्र ! यह नीपकी लकड़ीका मूठा तु कहांसे
 लाया ? ॥ ५९ ॥ धोबीने कहा कि मुझे नदीमें बहना
 हुवा मिला है. नव वणिक्ने कहा कि, इसके बदलेमें बहुत-
 सा काष्ठ लेकर यह हमको दे दो ॥ ६० ॥ उस निर्विषे-
 की धोबीने कहा कि हे माधु पुरुष ! ले लो. इसमें मेरी क्या
 हानि है ? इसप्रकार कहकर उस चन्दनके मूठके बदलेमें
 बहुतसा काष्ठ समूह लेकर वह मूठा दे दिया ॥ ६१ :

जैसा दुःशील कुरूप नीच कुलकी स्त्रियोंके सौभाग्य रूप
और सुन्दरताका गर्व होता है, वैसा सुशील सुख्य कुलीन
निष्पाप धर्मात्मा स्त्रियोंके कदापि नहीं होता ॥ ३७—३८
अपने हितकी बांछा करनेवाले समझदार पुरुषोंको कुलीन
भक्तिगती शान्त धर्ममार्गकी जानकारी एक ही स्त्री करनी
चाहिये ॥ ३९ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंके वर्गाभूत होते हैं,
वे निःसंदेह इस लोकमें तो कुलकी कीर्ति और सुखका
नाश करने हैं और परलोकमें असह्य नरक वेदनाको भोगते
हैं ॥ ४० ॥ इस जगत्में बर्ग व्याघ्र और सर्पोंसे निर्मय
रहनेवाले नो बहुत पुरुष हैं, परंतु स्त्रियोंसे नहीं रहनेवाला
एक भी नहीं दान्यता ॥ ४० ॥ जो पुरुष कुंडलमग्निकी
सदृश दुर्बुद्धि होने हैं, उनके सन्मुख पण्डित जनोंको चाहिये
कि तत्त्व , दन्तुका स्वरूप , न कहें ॥ ४२ ॥ इस प्रकार
अपनी मित्रनीय क्या कह कर, दूसरे मूर्खके चुप रहनेपर
तृतीय मूर्खने अपनी क्या कहनी प्रारंभ की ॥ ४३ ॥

तृतीय मूर्खकी कथा—हे पुरुषानियो ! अब मैं तुमको
अपनी मूर्खता का कहना हूँ, जो आप सावधान होकर सुनें
॥ ४४ ॥ एक समय मैं समुद्रगत जाकर अपनी छाँको
ले आया, रात्रिको सोने समय वह बोझनी नहीं थी, सो
मैंने कह कि मैं कुशोदरि : इस दोनोंमेंसे जो कोई पहिले
बोलेंगा वही भीमें नलें हुये गुदके दश पुत्र दारेगा (देगा)
॥ ४५—४६ ॥ तब मेरी स्त्राने कहा कि, बहुत ठीक है, ऐसा

हैं पान्तु अना रित पाहनेवाले 'अमितगंतयः' करिये म-
प्रमाणज्ञानके धारक को सत्पुरुष हैं ये अपनी बुद्धिके अनुसार
अपने मनमें विचारकर पढ़िलेसेही हित किया करते हैं ॥

इति श्रीअमित्रगति भाषार्थ्यविरचित बर्मस्रीशं संस्कृत
मंथनी नालाशोपिनी भाषाटीकामें नवम परिच्छेद पूर्णहुता ॥



अथानन्तर मनोवेगने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! रागसे
अन्धा रक्तपुरुष, द्वेषका करता द्विष्टपुरुष, विज्ञानकर रति
मूढपुरुष, ध्युद्गमाही राजाका पुत्र, विपरीतात्मा पित्रद्विष्ट,
बिनापरीक्षा किये ही आश्रके तुम्हको काटनेवाला शेखर
नामका राजा, सुगमि गौ का भ्राता तोमर वादशाह, अग-
स्त्युष जलानेवाला इाली, नामका लकड़ीसे चन्दनका बद-
का करनेवाला लोभा रजक और विचाररहित चार मूर्ख ये
दश प्रकारके मूर्ख दहे, इनमेंसे कई मूर्ख तुम लोगोमें ही
तो सुझे बता दो ॥ १-२-३ ॥ यह बात सुनकर ममस्व
ब्राह्मणोने कहा कि हे भद्र ! हम सब विचारवान् हैं जिस-
प्रकारगुरुद सपनेको पानना है उसीप्रकार हम मूर्खको दण्ड
देने हैं ॥ ४ ॥ मनोवेगने फिर कहा कि, हे विप्रगजा ! मेरे मनमें
अब भी थोड़ा नाश है, क्योंकि आप लोगोमें बहुतों अपने
वाक्यके अग्रद करनेवाले होंगे ॥ ५ ॥ दूसरे जिस प्रकारके पास
सुन्दर धनोदर बैठनेका आसन नहिं हो, शिर पर मोटी पगड़ी

खाने लग जाती है, उसी प्रकार रक्षा नहीं की हुई निरं-
कुश स्त्री मनसे प्रसन्न हो अपने मनचाहे इष्ट पुरुषको ग्रहण
कर लेती है. और रोकने पर प्रायः कोप किया करती है
॥८४॥ उस अग्निदेवके साथ रमण करनेके पश्चात् छाया
ने कहा कि तू यहांसे शीघ्र ही चला जा, क्योंकि मेरे पति
विरुद्धवृत्ति यमराजके ध्यानेका समय हो गया है ॥८५॥ वह
यदि तुझे तेरे साथ देखैगा तो गुस्से होकर मेरी नासिका
फाट लेगा और तुझे भी जानसे मार डालेगा. क्योंकि
अपनी स्त्रीके जागृतो देखकर कोई भी क्षमा नहीं करता
॥ ८६ ॥ तब उस पानस्तनमे पीठिन अंगवाली छायाको
आज्ञित पूर्वक अग्निदेवन कह्य कि, हे प्रिये ! तुझे छोड़
कर मैं जहां जाता हूं वही भूमि दुर्ध्वविषयान्ता वियोगरूपी
दुर्धी माया में लगेगा ॥ ८७ ॥ इस भाषण पर प्रिये ! तेरे
साथ दुःख मानकर ही मैं जाता हूं जो तू ने बहुत ही श्रेष्ठ
है, पानस्तन देखा का पुत्र क मरुपी अग्निमें तेरे
विना न रह सकेगा ॥ ८८ ॥ इस प्रकार
कहते हुए अग्निदेवन ने छाया के साथ अपना समय निकलकर
अग्निमें प्रवेश किया । तब छाया ने पृथिवी से हृदयमें
रखे जाने की अपूर्व कुतूहल से अग्निमें जाई है ॥ ८९ ॥
तत्पश्चात् यमराज, अग्निमानस्य रूपक इस पानदी
हुए भी नहीं जनता दुःख छूटने पर अग्निमें रखकर
चल दिया. सो उचित है विद्योक्त प्रपञ्च विद्याने-

॥ २३ ॥ भिड़ीके वृक्षकी शाखा [हाइली] पर कपंडलुका
 रखा जाना और उसमें हाथीका प्रवेश करना, फिरना
 और निकलना आजतक इस तीन लोकमें क्या किसीने भी
 देखा या सुना है ? ॥ २४ ॥ हे दुर्मते ! कदाचित् अग्निमें
 जल, शिलापर कमल, गधेके सींग, सूर्यमें अन्धकार और
 भ्रूलपवर्तोंमें चलपणा हो जाय परन्तु तेरे वचनकी सत्यता
 तो कदापि नहीं हो सकती ॥ २५ ॥ यह सुनकर विद्याधरने
 कहा कि—हे ब्राह्मणों ! बड़ा आश्चर्य है कि—ऐसे असत्य-
 मापी केवल हम ही हैं ? क्या तुम रे मतमें ऐसे २ अनिवार्य
 असत्य वचन नहीं हैं ? ॥ २६ ॥ इस लोकमें मारः सब
 जने परके ही दांप देखते हैं अथवा अरने अमन्यमतकी
 पोषणा करनेवाले ही दीखते हैं किन्तु परके गुणोंकी
 शुद्धिको विस्तार करने लगे पक्षधर मत अर्थात् ज्ञानका
 धारक कोई ब्रह्मा ही होता है ॥ २७ ॥

इति श्रीअमिनगन्धर्वविश्वचर्मनर्यः सा संकृत प्रकी
 बालावबोचिनी भाषाटीक सं बरहवा पञ्चउद पृष्ठ दुव ॥१२॥

— *the same* —

॥ ९२ ॥ उस दिन जनेर देवीमनाशोंसहित हनु-
 मंत्री मरुत मुकुंदी राजधानी प्रतिष्ठित सुन्दर रघुनाथजी
 चंद्रमौलाया कन्या अर्चनी मन्त्रियो सहित प्रार्थना
 करने लगे गंगाप्रान्तों आदि ॥ ९३ ॥ सो राजा दत्त
 मन्त्र जल हीयेसाँसत यमलका हेमनेकर बह सोय्य उस
 चंद्रमौली ॥ ९४ ॥ मया मया सा जलसे लीपदी सपान
 लस चंद्रमौली ॥ ९५ ॥ पटाना दुःख गर्भाधान हो
 मया ॥ ९६ ॥ मया दुःख का गर्भवती देखकर
 प्रमद ॥ ९७ ॥ प्रमद रघुनाथका ॥ ९८ ॥ राजाने
 तुलसी ॥ ९९ ॥ कन्या ॥ १०० ॥ दया सो
 ॥ १०१ ॥ ॥ १०२ ॥ ॥ १०३ ॥ ॥ १०४ ॥ ॥ १०५ ॥
 ॥ १०६ ॥ ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥
 ॥ १११ ॥ ॥ ११२ ॥ ॥ ११३ ॥ ॥ ११४ ॥ ॥ ११५ ॥
 ॥ ११६ ॥ ॥ ११७ ॥ ॥ ११८ ॥ ॥ ११९ ॥ ॥ १२० ॥
 ॥ १२१ ॥ ॥ १२२ ॥ ॥ १२३ ॥ ॥ १२४ ॥ ॥ १२५ ॥
 ॥ १२६ ॥ ॥ १२७ ॥ ॥ १२८ ॥ ॥ १२९ ॥ ॥ १३० ॥
 ॥ १३१ ॥ ॥ १३२ ॥ ॥ १३३ ॥ ॥ १३४ ॥ ॥ १३५ ॥
 ॥ १३६ ॥ ॥ १३७ ॥ ॥ १३८ ॥ ॥ १३९ ॥ ॥ १४० ॥
 ॥ १४१ ॥ ॥ १४२ ॥ ॥ १४३ ॥ ॥ १४४ ॥ ॥ १४५ ॥
 ॥ १४६ ॥ ॥ १४७ ॥ ॥ १४८ ॥ ॥ १४९ ॥ ॥ १५० ॥

॥१३॥ मया देवताओंने ही बन्दर होकर राक्षसोंके
 को मारा तो यह कहना भी मनोवांछित गतिको म
 होना ॥ १४ ॥ गंकरने मर्बड़ होकर गारदको ऐ
 क्यों दिया ? निमसे देवताओंके भी बड़ा उग्रद्वर हु
 ठे मित्र ! पानाओ मयन करनेसे (पिलोनेसे) पक्क
 निरुद्धता उसी प्रकार अन्यमतके पुराण विचार
 पर सर्वथा सामरहित हीछते हैं ॥ १५ ॥ ठे पि
 लोगोंकर कल्पना किये गये सुप्रोवाहिक वानर और
 शादिक गजस नदि ये ॥ १७ ॥ य मय विद्या
 सम्यक् जैनधर्ममें लवलीन पवित्र मदानाग बड़े
 मनुष्योंके राजा है. इनकी सेनामें बरगाह निरमे
 यजा होनेसे वानरवर्गी कहनेमें आता है और गवण
 ध्वजामें गजसोंकी मूर्चिका लव गहनेमें गजसव
 जाते हैं ॥ १८—१९ ॥ जो है 'नर' चद्रपाके
 उज्ज्वलदृष्टिके चारक भग्य है. उनका निमप्रकार
 स्वापोंके गौतम गदावरने श्रेणि गजनामे व न किया
 प्रकार अद्धान करना चानिये ॥ २० ॥ है चद्र !
 मतके पुराणोंके मपोडे जोर भा मित्र तः हैं, इस
 कहकर पवनरेगसहित श्वेताम्बरका मेष गण किया
 ॥ २१ ॥ पढ़ने नगरमें उहे द्वारमें प्रवेश करके जी
 बाद सूचनाकी मेरी बजाकर मानेक पिहामनपर बैठा
 ॥ २२ ॥ मेरीका शब्द सुनते ही ब्राह्मणोंने आकर

की. सो ठीक ही है बरकी इच्छा रखनेवाला क्या क्या
 नहि करता ? ॥ ४७—४८—४९ ॥ तदाश्वात् रावणने
 भीम हाथीसे गन्धर्वदेवोंको भी मोहित करनेवाला हस्तक
 नापा मंगीत करना मारम किया ॥ ५० ॥ महादेवने भी
 पार्वतीके मुख परसें मपनों दृष्टिको हटाकर रावणके मादसको
 देखकर उसको मन चाहा वर दिया ॥ ५१ ॥ वत्स-
 श्वात् गर्भ २ गहनमे जमीनको सिंचन करवा हुई उस
 मन्त्रमालाको रावणने ओदरदिन भपने कन्धोरर चिपका
 लिया ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार बान्सीविने रामा-
 यणमें लिम्बा है कि नहीं सो आपलोग यदि सत्यवादी
 है तो ठीक २ कहो ? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि-हे माणु !
 यह सब मन्त्र है. इसप्रकार ममिद्र न प्रत्यक्ष बातको
 अन्यथा कौन कह सकता है ? ॥ ५४ ॥ इतनेपटुभागीने
 कहा कि-जब रावणने जाते दूरे तो मन्त्रक उसकी पटकें
 उग मय ना पों एक पलक में नहि चिपक सकता ॥ ५५ ॥
 धारका तो यह वचन मन्त्र और मोग वचन असम्य है,
 इसमें मिश्रण पोंके व दान्द्वह और कुछ नहि दीमया ॥
 ५६ ॥ यदि कौन कहा कि-माणुके शिर तो महादेवकीने
 जाद दिव. सो कहा कि नहि हा मन्त्रा क्योंकि महादेव-
 भीमें मन्त्रक नाह कनक न न दानो ना नारियोंने दाग
 कनका दूरा अवन ७ ७ ७ ७ न जाद लिया ? ॥ ५७ ॥
 जो मन्त्रक कानन दान ७ ७ ७ ७ न मन्त्रमे मन्त्रमे है, वह मन्त्रका



और ज्ञानके किना कदापि नष्ट नहीं हो सकता ॥ ३७ ॥
 क्रोधमानमायालोभादि कषायोंसे उत्पन्न हुवा पाप गंगा
 स्नानादिसे धोया जाता है. ऐसे वचन मूढात्मा ही कहते
 हैं. पीमांसक (परीक्षक) विद्वान् कदापि नहीं कह सकते
 ॥ ३८ ॥ जो जल शरीरको ही शुद्ध करनेमें असमर्थ है,
 वह शरीरके भीतर रहनेवाले दुष्ट मनको किसप्रकार शुद्ध
 वा निर्मल कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ जो लोग ऐसा कहते
 हैं कि—गर्भसे मृत्युपर्यन्त यह जीव पृथिवी अप तेज वायु इन
 ४ भूतोंसे (तत्त्वोंसे) ही बना हुआ है. इन ४ तत्त्वोंके वा
 पदार्थोंके सिवाय अन्य कोई जीव पदार्थ नहीं है 'वे लोग
 अपना आत्माको ठगते हैं ॥ ४० ॥ चित्त अर्थात् ज्ञान
 जो है सो आत्माका (जीवका) स्वभाव है. और चित्तका
 (ज्ञानका) कार्य जानना वा विचार करना है. यह जानने
 वा विचारनेकी शक्ति प्रत्येक देहधारामें प्रतिक्षण पाई
 जाती है. सो प्रतिक्षणके ज्ञानका वा विचारको पूर्व क्षणका
 ज्ञान वा विचार कारण होता है अर्थात् आदिके ज्ञानसे व
 विचारसे मध्यका ज्ञान और मध्यके ज्ञानसे अन्तका ज्ञान
 और अन्तके ज्ञानसे आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है. जब
 इसप्रकार प्रत्येक क्षणके ज्ञानको पूर्व २ ज्ञान कारण है तो
 उसका अभाव कदापि नहीं हो सकता. जब ज्ञानगुणका
 अभाव नहीं है तब उसके स्वामीका (गुणीका) अर्थात्
 जीवका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा ॥ ४१—४२ ॥ यद्यपि

कर्मोंको किसप्रकार नष्ट कर सकती है ॥ ६५ ॥ “सत्या-
 र्यगुरुनके वचनोंसे जानकर रत्नत्रयके सेवन करनेवालोंके
 ही पाप नष्ट होते हैं。” यह वचन ही सत्य जानना ॥ ६६ ॥
 हे मित्र ! कृपायके वशीभूत होकर आत्माके किये हुये
 पाप दीक्षा लेनेसे ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इस बातको
 कौन विद्वान प्रमाण कर सकता है ? ॥ ६७ ॥ यदि कृपाय-
 सहित ध्यान करनेसे ही मोक्षपदकी प्राप्ति होय तो बंध्याके
 पुत्रका मोभाग्य वर्णन करनेमें भी द्रव्यकी प्राप्ति होना
 चाहिये सो असम्भव है ॥ ६८ ॥ जिन पुरुषोंके इंद्रियोंका
 जप और कृपायोंका निग्रह नहीं, ऐसे पुरुषोंका वचन धूर्तोंके
 वचनोंके समान अन्य नहीं है ॥ ६९ ॥ उद्धर्त और अधो-
 र्ताके अन्तरसे भेदा नित्य होती है सो समझकर जो
 बुद्धिमान पेटके फाटकर निकला और पांशुभक्षणमें
 लालचसे भोजन करनेके लोभसे शयमार कहता है,
 उस मुठबुद्धके हृदय में कि प्रज्ञा हो सकती है ?
 ॥ ७० ॥ ७१ ॥ जो मुठबुद्धका दोष भ्रमणमें शरीरको
 जानबुझकर च्युत करके मृग आगे टोली जाता, उस बुद्धके
 मनमें कैसे हो सकता है ? ॥ ७२ ॥ जो बुद्धप्रपञ्चमें विन्दु
 सर्वशून्यपदार्थ मानता है सो जो जीव जगत्पुरुष कहता है,
 उसके चेतनात्वं प्रमाण हो सकता है ॥ ७३ ॥ जो सर्वशु-
 न्यताकी चेतना करता है, वह बुद्ध कैसा ? और उसके
 मनमें चक्षुष्योक्तादित्यकी व्यवस्था हो क्या हो सकती है ?

को धार कोलकूटवपका समाने अपने अमासिक पीना
 पीते हुये ॥ ५१ ॥ कितनेयक राजा तो लुधावृषासे पीडित
 हो, लज्जा छोडकर अपने अपने घरको चले गये. क्योंकि
 मनुष्य तर्भातक लज्जावान रहता है, जबतक कि-उसका
 चित्त दूषित न हो ॥ ५२ ॥ किन्ने ही राजाओंने ऐसा
 विचार किया कि-यदि हम भगवानको वनमें छोडकर
 घर जावेंगे तो भगवानके पुत्र भग्नचक्रवर्त्ती रुष्ट होकर हमारी
 वृत्ति छीन लेंगे, तब भी तो भिक्षादन करना पड़ेगा, इससे
 तो भगवानकी सेवा करने हुये इस वनमें रहना ही श्रेष्ठ
 है. इस प्रकार विचार करके वे सब राजा रुद्रमृलादि भक्षण
 करनेहुये वहीं पर रहे अपने २ घरको नहीं गये ॥ ५३-५४ ॥
 तन्श्चात् कच्छ महाच्छराजाने अपने पाटिन्यके गर्वसे
 फलमृलादि भक्षण करना ही तात्पर्यवर्त्तनाकर प्रचार
 किया ॥ ५५ ॥ और धर्मचिकुमान् ग्राह्यपत्रका प्ररूपण
 करके अपने कपिरादि शिष्योंका उद्देश किया ॥ ५६ ॥
 इसप्रकार ... यान्य राजा जोत भी अपना २ रुचि अनु
 सार नानमें नरेवउ प्रकारक महा म्ध्यान्वको बढ़ानेवाले
 पाखडनन चलाये ॥ ५७-५८ ॥ इसमें शुक्र और वृह
 स्पति नामक दो राजावान मिलकर स्वेच्छापूर्वक अपने
 द्वियोंको पोषण करते हुये चावाकदर्शनकी प्रवृत्ति कर

पुत्र अर्ककीर्ति हुवा और भरतके भाई बाहुबलिके सोम नामका पुत्र प्रसिद्ध हुवा. इन ही दोनोंके वंश सूर्यवंश और सोमवंश (चंद्रवंश) नामसे प्रसिद्धिमें आये ॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् कालदोषसे मौंडिलायन नामक पार्श्वनाथ भगवान् का शिष्य एक तपस्वी था. उसने महावीरस्वामीसे रुष्ट होकर बौद्धमतको प्रगट किया [इस श्लोकमें 'वीरनाथस्य' षष्ठ्यन्तपद होनेसे व दो पुस्तकोंमें 'मौगलायनः' पाठ होने से ऐसा भी अर्थ होता है, कि महावीरस्वामीके तपस्वी शिष्यने मौगलायनमत (मुसलमानोंका मत) प्रगट किया] ॥ ६८ ॥ उसने शुद्धोदन राजाके पुत्रको बुद्धपरमात्मा कह कर प्रगट किया है सो ठीक ही है, कोपरूपी बैरीसे पराजित होकर संसारी जीव क्या २ नहीं करते ? ॥ ६९ ॥ कृष्णके मरनेपर उसका बलभद्रजी भ्रातृमोहके बशीभूत हो छै महिनेतक लिये २ फिर-उसी दिनसे जगतमें कंकाल-नामक व्रत प्रसिद्धिमें आया ॥ ७० ॥ हे मित्र ! मिथ्या-दृष्टि पुरुषोंने जो अगण्य पाखण्डमत चलाये हैं उनका मैं कदांतक वर्णन करूं ? ॥ ७१ ॥ जो पाखंड चोथे कालमें बीजरूपसे स्थित थे, वे सब इस कलिकालरूपी (पंचम-कालरूपी) पृथिवीमें प्रगट होकर विस्तारको प्राप्त हो गये ॥ ७२ ॥ जो समस्त देवोंकर वंदनीय है और विरागताके साथ केवलज्ञानरूपी आलोकसे अवलोकन किया है तीन लोक जिसने, वही जिनेन्द्र भगवान् परमेष्ठी है (सत्यार्थ

पैँडपर प्राप्त हो सकती है, परंतु पण्डितोंकर पूजनीय निर्मल
 तत्त्वरुचिका मिलना कठिन है ॥ ९४ ॥ हे मित्र ! मूढजन
 मिथ्यात्वसे दूषित होकर दिख'ये हुए समस्त वस्तुस्वरूपको
 विषंगत देखते हैं, ऐसे में मिथ्यात्वको नष्ट करके तूने
 ही मुझे अलभ्य निर्मल सम्यक्त्व दिया ॥ ९५ ॥
 मैंने अब मिथ्यात्वरूपा विषको त्यागकर मन वचन कायसे
 जिनजापनको ग्रहण किया, सो हे महापते ! अब तेरे
 प्रसादसे मैं ब्रह्मप्राप्ति में दूषित न जाऊँ, ऐसा उपाय
 कर ॥ ९६ ॥ दूर हो नष्ट है मिथ्यात्व जिसका ऐसे
 अपने मित्रका उद्युक्त मन ने स्मरण मनावेग ग्रन्थन्त
 हृष्य मान हृष्ट मान कर ही न करे कि—प्राने उपायसे
 मन विचरता है मिथ्यात्व से नष्ट होकर ब्रह्मप्राप्ति हे कि—
 जिस प्राप्ति के लिये मैंने तूने मुझे प्रवचन उस
 पनोरिते ग्रन्थ उपाय से मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों
 से बालिष्ठ प्रवचन से मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों
 कि प्रवचन से मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों—
 ऐसा कोन उपाय है, जो मुझे प्रवचन प्रसाद करे
 ॥ ९८ ॥ हे मित्र ! तूने मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों
 उपाय से मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों—
 कृत वेदान्त से मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों—
 पर चतुर्दश प्रवचन से मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों—
 हृष्ट ॥ ९९ ॥ सो अब तूने मुझे प्रवचन दितेन्द्रवचनों

रूपों परमें रहनेवाले अनिराध्य लोकेशात् मोहरूपी
 कान्तो वाक्यरूपी क्षिरगोले नष्ट करनेमें समर्थ, जपे
 है शान्ती गति जिनके ऐसे केषनज्ञानीरूपोंमूर्धनी
 पूर्वक नमस्कार व स्तुति काके जिनमनिनामा मुनिके
 गोंके निकट ही बैठ गये ॥ १०० ॥

इति श्रीभामिनगत्याचारः निगजिन धर्मपरीशामंस्कृतप्रबंधी
वशेषिनी भाग टीकामे अष्टादश पदच्छेद पूर्ण हुआ ॥ ऐ

जर ये दानो तिनमाननाश मुनिन पा । बैठ
तब सुनिपडा न मनावे । की भद्र हृदय काठ बाने
हे भद्र ! का पदा पुष्पात्मा नमः । प्रवाये । हे
जिसका संगार ज्ञाने वरने । ने । । । । । । ।
तुने महाव्रत । मङ्गल फलाने । । । । । । ।
॥ १—२ । । । । । । । । । । । । । । । । ।
स्वरूप । हा । । । । । । । । । । । । । । । । ।
पवनवेग । अह । । । । । । । । । । । । । । । । ।
आया है । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
जाकर सने । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
पदेश कहने । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
हे माथा ! मङ्गल दि । । । । । । । । । । । । । । । । ।
पवनवेग समभमय । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
जावे, ऐसा उ देश जानिय । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
नाश मुनि महाराजने कहा कि— हे भद्र ! शम्भात्मा ।

शुरूकी साक्षीसे सम्भवत्पूर्वक आवकके घन ग्रहण कर, क्योंकि व्यापारीके सपान साक्षी पूर्वक घन ग्रहण करनेवाला अष्टताको प्राप्त नहीं होता। इस कारण यह घन साक्षात्पूर्वक ही ग्रहण काने योग्य है ॥ ६—७ ॥ जिसप्रकार क्षेत्रकी क्यारामें जड़के बिना रोपण किया हुआ धान्य फलीभूत नहीं होता, उर्माप्रकार सम्भवत्के बिना घनग्रहण करना भी सफल नहीं होता ॥ ८ ॥ नीचसहित देवपंदिर्की मदद सम्भवत्वमहित जीवोंका ही दूर्य घन निश्चल होता है ॥ ९ ॥ जिनेन्द्रगवानकर भाषित जीव अनाव आसन्न ध्वंश संवर और माक्ष इन मनुष्योंके श्रद्धान कर्मका सन्तुष्टोंने जनोंको पापनेवाला सम्भवत् कटा है ॥ १० ॥ इस पवित्र सम्भवत्की शुद्धी कात ॥ आठ रोसाहित और संवेग करण दया और आत्मिक्याद गुणान्तर सहित धारण करनेवाले पुरुषका ही घन (वायु) फलीभूत होता है ॥ ११

आवकाचार का वर्णन ।

आवकाचारमें पांच अणुवन, तीन गुणवन, चार शिक्षावन इसप्रकार चार घन प्रयोग करने चाहिये ॥ १२ ॥

१ अहिमा २ सत्य ३ अन्त्य ४ ब्रह्मचर्य और ५ असगता (अपरिमितत्व) इन पांच वीको एक देशधारण करना तो पांच अणुवन है ॥ १३ ॥ हे वत्स! घनको धारण करना तो सहज है परन्तु उनकी रक्षा करना कष्टसाध्य

है. जैसे बांसका काटना तो सहज है परन्तु घसना रद्दा कठिन है । १४ । जिस प्रकार मनवांछित सुखको देनेवाले धनको घासमें छिपाकर रखा करते हैं, उसी प्रकार अपने विचरूपी घरमें ग्रहण किये हुए वस्तुरूपी रत्नको रखकर वस्तुसे सदा रक्षा करना चाहिए ॥ १५ ॥ क्योंकि ममादसे नष्ट हो जानेवाला वस्तु फिरसे प्राप्त नहीं होता. क्या कोई समुद्रमें डाला हुआ दिव्य रत्न लादेनेको सपर्य है ! रुदापि नहीं ॥ १६ ॥

वस्तु और स्थावाके भेदसे जीव, दो प्रकारके हैं उनमेंसे वस्तुकी इच्छा करनेवाले प्राणिकको (पृथ्वीको) वस्तु जीवोंकी रक्षा करना चाहिए, वस्तु जीवोंकी रक्षा करनेकी ही अहिमागुधन कहा है ॥ १७ ॥ दो इन्द्रियवाले तीन इन्द्रियवाले चतुर्गुण्डियवाले और चार इन्द्रियवाले इन ४ प्रकारके वस्तु जीवोंकी रक्षा करनेवाले जीवोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंकी चाहिए कि उन वस्तु कायसे इनकी रक्षा कर ॥ १८ ॥ हिमा दो प्रकारकी १ एक आरम्भी, दूसरी अनारम्भी. मा मुनि ने जाना ही प्रकारका हिमाको छाड़ने है. परन्तु पृथ्वी है मा अनारम्भी हिमा का ही छाड़ना है १९ जो प्राणिक मोक्षकी इच्छा रखनेवाले वस्तुप्राणिक हैं. उनका चाहिए कि निरर्थक स्थावर जीवोंकी हिमा भी नहीं करें ॥ २० ॥ बहुतसे दयाहीन देवता, अनियि, औषधि, विषय व मन्त्रादि पावनेके लिए जीवोंकी हिमा करने

हैं, सो इनके अर्थ कदापि जीवहिंसा नहीं करना चाहिए ॥ किसी जीवको बांधना मारना नासिकादिका छेदन भेदन करना बहुत भार लादना भूखा प्यासा रखना इत्यादि अतीचारों सहित हिंसाका त्याग करनेसे अहिंसागुणवत् स्थिर होता है ॥ २२ ॥ जिहास्वादके वशीभूत हो मांसभक्षणके लोभसे भयभीत जीवोंका प्राण हरना कदापि योग्य नहीं ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपने मांसकी पुष्टिके लिये परके मांसको खाता है, उस निर्दयी हिंसकका नरकके अनन्त दुखोंसे छुटकारा नहीं होता ॥ २४ ॥ यह तो नियम ही है कि—मांसभक्षीके चित्तमें दया किसी प्रकार भी नहीं हो सकती. जब दया ही नहीं है तो उस निर्दय पुरुषमें धर्माश्रय कहाँसे हो ? और धर्मरहित जीव अनेक दुखोंके घर सातवें नरकको जाता है ॥ २५ ॥ जिमका चित्त प्राणियात् करते समय देखने व स्पर्श करनेका डोंडता है, वह भी नरकमें जाता है तो फिर हिंसा करनेवाला नरकमें क्यों नहीं जायगा ? ॥ २६ ॥ जो पुरुष मांसका लोलुपतासे जन्मभर हिंसा करता है, उसका नरकरूपी कृशसे निकलना मैं कदापि नहीं देखता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य मांसभक्षण करनेमें रत होता है, उसको नरकमें नारकी जाँव लाहेकी शलाकाओंसे छिन्न भिन्न करके ज्वरदस्ती पकड़कर जाश्वल्यपान वज्राग्निमें डाल देने हैं ॥* जिमप्रकार मांसभक्षी सिंहका चित्त मृगादिकको देखते ही

जितेन्द्रियता आदि संपत्त धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥
 मद्यके समान न तो कोई कष्टदायक है, न कोई अज्ञानदायक
 है, न कोई निन्दनीय और महाविष है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष
 मद्य पीकर मतवाला (पागल) हो जाता है, वह जिस जिसको
 देखता है उसी उसीके आगे निर्लज्ज होकर देखता है, रोता
 है, चिंकार लगाता है, स्तुति करता है, शब्द करता व गाता
 है, तथा नृत्य करने लग जाता है ॥ ३७ ॥ मद्य जो है सो
 रोगोंको घणघणके समान संपत्त दोषोंका मूल है, अतएव
 इसका सदैवके लिये त्याग ही रखना चाहिये ॥ ३८ ॥

अनेक जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न हुआ, मधुमक्षियोंकी
 मूठन, भ्रूच्छभीलोंकी लारसे मिला हुआ, महापापदायक
 मधु (सहृद) दंयालु पुरुषोंको सर्वथा भक्षण करना योग्य
 नहीं है ॥ ३९ ॥ अनेक जीवोंसे भरे हुए सात ग्रामोंके
 जलनेमें जितना पाप होता है, उनना पाप मधुके एक कण-
 भक्षण करनेमें लगता है ॥ ४० ॥ जो धर्मात्मा पुरुष होते
 हैं, वे मक्षियोंके द्वारा एक एक पुष्प लाकर वपन किये हुए
 उच्छिष्ट अपवित्र मधुको कदापि भक्षण नहीं करते ॥ ४१ ॥
 मद्य पांस मधुमें प्रत्येकके रसानुसार भिन्न २ ज्ञानिके जीव
 होते हैं, वे सबके सब निर्दयी जीवोंके द्वारा भक्षण किये
 जाते हैं ॥ ४२ ॥

जो नीच पुरुष प्रत्यक्ष जीवोंके भरे हुए पांच प्रकारके
 (बटके फल, पीरलके फल, बटल, गूलर, उमरकल) उद्दु-

परफल खाते हैं, उनके चित्तमें दया कहांसे हो सकती है ?
 ॥ ४३ ॥ जो सात्त्विक जिनाशके पालनेवाले और जीवोंके
 साके त्यागी हैं, उनको पांच प्रकारके उदुम्बरफल सर्वप्रथम
 छोट देना चाहिए ॥ ४४ ॥ इनके अतिरिक्त जीवोत्पत्तिके
 कारण कंद मूल फल पुष्प नवनीत और ऐसे अन्नादिक
 भी दयावान् पुरुषोंको छोड़ देना चाहिए ॥ ४५ ॥

दमरे काम कोथ मद ड्रेय लोभ मोहादिके बशीभूत हो
 कर परको पीटाकारी बचन बोलना स्वहितपर्यन्त पुरुषोंको
 छोड़ देना चाहिए । ४६ । जिनबचनोंके बोलनेसे धर्मभी
 हानि हो, लोकसे विरोध हो, विद्वान्म नष्ट हो जावे, ऐसे
 वचन क्यों कहना ? । ४७ । जिस वचनसे नाचता उत्पन्न
 हो, जिस असत्य वचनसे अनेक लोग भी निंदा करें,
 ऐसा असत्य वचन श्रावक जन उदात्त नहीं बोलते ॥ ४८ ॥

नोसरे—तेजमें गायमें सतिहानमें (तुलेमें) गौशा-
 लामें परानमें (नगामें) जन्में और पार्वीमें भूजे हुए गिरे
 हुए दगाए हुए गड़े हुए गवने हुए वा स्थानन किए हुए
 जाना दिए हुए [मालिककी आज्ञाके बिना] पर द्रव्यको
 मर्त्याके समान देखते हुये पानपमे भीन बुद्धिवान पुरुष
 दारिद्र्य ग्रहण नहीं करने कर्मात्त उनादिक है, सो जीवोंके
 अन्त कार्योंका भावनेवाले नाशक प्राण हैं, सो उनके
 उनादिक पशुपक्ष प्रायः शीघ्र हो मर जाते हैं ॥ ४६-५०
 ॥ जिसने किसीका द्रव्य हरा अपने उसके समस्त

सुखोंके देनेवाले धर्म बन्धु पिता पुत्र कांति कीर्ति बुद्धि-
 स्त्री आदिक सब हरे ॥ ५२ ॥ मरण होनेमें तो एक क्षण
 भरके लिये एक जीवको ही दुःख होता है, परन्तु द्रव्य
 नाश होनेपर मनुष्यको सकुटुम्ब समरभर दुःख होता है ॥
 तथा मच्छ व्याघ्र व्याघ्र आदिक निरन्तर दुःख देनेवालोंसे
 भी चौर अधिक पापिष्ठ होता है ॥ ५४ ॥ जो नर परद्रव्य
 ग्रहण करता है, उसको इस लोकमें तो राजादिकसे सर्व-
 स्वहरणादि घोर दण्ड मिलता है और परलोकमें नरकके
 दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

चौथे--नरकरूपी कूपका मार्ग, स्वर्गरूपी घरमें जानेसे
 अटकानेवाली खाई जो परस्त्री, उसके सेवनका त्यागकर
 ब्रती पुरुषको स्वदारसन्तोषव्रत धारण करना चाहिए ॥
 जो स्वर्गमोक्षादिके सुखमाप्तिकी इच्छा रखते हैं, उन पुरु-
 षोंको अपनी स्त्रीके अतिरिक्त सब स्त्रियोंको माता सहन
 बेटीके समान देखना चाहिये ॥ ५७ ॥ परस्त्री अत्यन्त
 ज्ञेययुक्त होनेपर भी दुःख देनेवाली है, निर्मल (सुंदर) होनेपर
 भी पापरूपी मलका करनेवाली है, रसकी आधार होनेपर
 भी लुब्धाको बढ़ानेवाली है, जडतासहित होनेपर भी आ-
 तापका बढ़ानेवाली है, अपना सर्वस्व देनेपर भी द्रव्य हरने-
 वाली है, इसप्रकार विरुद्धाचारसे प्रवर्त्तित होनेवाली जो परस्त्री
 सो दूरसे ही त्यागने योग्य है ॥ ५८—५९ ॥ यद्यपि
 स्वर्ग और परस्त्रीके सेवनमें कुछ भी विशेष नहीं है, परन्तु

परस्त्री सेवन करनेवाला तो नरक जाता है और स्वदार-
सन्तोषी स्वर्गही जाता है, कारण यही है कि स्वस्त्रीकी अपे-
क्षा परस्त्री सेवनमें अनुराग अधिक होता है. और परदृष्ट
में राग करना ही दुःखका मुख्य कारण है ॥ ६० ॥ जो
स्त्री भगने पतिको छोड़कर निर्लज्ज हो परपुरुषके साथ रमण
करती है, उस परस्त्रीपर किस प्रकार विद्वान् किया जाय ?
॥ ६१ ॥ परस्त्रीको रमणीय देखनेसे सुख न होकर भाङ्ग-
लता और नरकमें ले जानेवाले घोर पाप होनेके सिवाय
कुछ भी प्राप्त नहीं है ॥ ६२ ॥ जिसके संगमात्रसे समस्त
लोकसम्पत्ती हानि हो, ऐसी परस्त्रीको स्वदारसन्तोषता
छोड़कर किस कारण सेवन करते हैं ? ॥ ६३ ॥ जो पुरुष
कायरूप अग्निमें सतत परस्त्रीको सेवन करता है, वह नरकमें
साक्षात् वज्राग्निसे संतप्त (जल) की हुई लोहमयी छीसे
(पुनलीसे) बिगड़ाया जाता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार पा-
रस्त्रीका श्रोत्रिय यमराजकी दृष्टिके समान प्राणसहस्रिणी
जीनका विद्वानोंको मरैव छोड़ देना चाहिये ॥ ६५ ॥

पांचवें-जिस प्रकार दुःखद हाथको देनेवाली अग्नि
जलसे श्रवण की जाती है, उसी प्रकार बड़ा हुआ अनालोभ
मन्तोषीपरके श्रवण करना चाहिये ॥ ६६ ॥ जो मन्तोषव्रत-

धारी हैं, उनको चाहिये कि—घन धान्य पृथक् पृथक् द्विपद चतुष्पद आदिका परिमाण कर लें ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार काष्ठके डालनेसे अग्नि बढ़ती है, उसी प्रकार कषायोंके छोटनेसे धर्म और स्त्रीके संगसे काम और लोभसे लोभ बढ़ता है ॥ ६८ ॥ नहीं जाता हुआ लोभ मनुष्यको भयानक नरकमें ले जाता है, सो ठीक ही है, जो ब्रह्मवान् बेरी होते हैं, वे क्या २ फल नहीं देते ? ॥ ६९ ॥ उपार्जन की हुई धन संपदाओंके भोगनेवाले तो बहुत हैं, परन्तु जब यह जीव उस आरंभसे उपार्जन किये हुये पापका फल नरकमें सहता है तो उस वक्त ये धन संपदाओंके भोगनेवाले पुत्र कलत्रादि कोई भी सहायक नहीं होते ॥ ७० ॥ जिस मनुष्यके निश्चल संतोष है, उसके देव तो फिकर हैं, कल्पवृक्ष उसके हाथमें ही हैं, निधियें अपने घरमें आई हुई हैं, ऐसा सम्भ्रान्त चाहिये, क्योंकि इन सब सुखदायक संपदाओंके होनेपर भी जिनके चित्तमें संतोष नहीं है, वह सदा दरिद्र और दुःखी ही है ॥ ७१—७२ ॥

२—इन पांच अंगुष्ठोंके सिवाय दिशा, देश और अनर्थदण्डसे विरक्त होना सो तीन प्रशास्त्रके गुणग्रन्थ हैं, श्रावकोंको ये तीनों गुणग्रन्थ मन वचन कायसे धारण करना चाहिये ॥ ७३ ॥

प्रथम तो दशों दिशाओंमें विधिपूर्वक जाने आनेका परिमाण करके उससे आगे नहीं जाना सो पहिला दिग्ग्रन्थ

नामा गुणव्रत ई ॥ ७४ ॥ इस गुणव्रतके धारण करनेसे मर्यादाके बाहर वस और हवावर दोनों पक्षरके ओंकारों हिंसाका सर्वथा त्याग हो जानेसे वस धावकके घरमें रहते भी मर्यादासे बाहर पड़ाव्रत होता है ॥ ७५ ॥ जिसने यह दिग्व्रत धारण किया, उसने तीन लोकको उल्लंघन करने वाली लोभरूपी अग्निका स्तंभन किया अर्थात् भस्मना लोभ पटाया ॥ ७६ ॥

दूसरे-दिग्व्रतमें जो दशों दिशाओंका परिमाण किया, वन दशों दिशाओंमें कोई भी प्राणी एक दिनमें नहीं आसकता इस कारण प्रतिदिन, सात दिन, १५ दिन अथवा महीने भर इत्यादि कालकी मर्यादामें क्षेत्रका परिमाण कर लेना सो दूसरा देशव्रत है. इसका फल उपर्युक्त गुणव्रतके समान तथाय्यक्षेत्रमें महानत पालनेका भा और भी अधिक होता है, सा ठाकुरों ई विशेष कारणसे विशेष लाभ क्यों न हो ?

तीसरे-व्यर्थ इत्यादि के त्यागनेका इच्छा रखनेवालों को धर्मकार्योंमें अनुराग और वापकाओं ई सहायक ऐसे पाच प्रभागक जन्योंका आगमना चाहिये । ७९ । दयावान धावकोंका चाहिये कि हिंसाके कारण प्यूर कुत्ता बिड़ी मैना गोता कुक्कुर्दारिका पकड़कर पालन पोषण न करें

(७९) दशों दिशाओंका परिमाण करनेवाला गुणव्रत ७९

तथा फांसी डंढा विष शत्रु हल वन्धन रज्जु अग्नि धात्री लोहा नीच इत्यादि हिंसाके कारण मांगे हुये न दें । ८१ । इसके अनिरिक्त जिनमें जीवोत्पत्तिकी पूर्ण संभावना हो, ऐसे संधान (आचार मूरुखा) फूलने आई हुई चीज बीचे हुये (सडे हुये) पदार्थका भक्षण भी कदापि न करें ८२

३-सांमायिक उपवास भोगोपभोगपरिमाण और अतिविसंविभाग ये चार प्रकारके शिखाव्रत (मुनिव्रतकी शिक्षा देनेवाले) हैं । ८३ ।

प्रथम-जीवन मरण सुख दुःख योग विपोगादिकमें समान भाव रखकर निरालस्य हो नित्य सांमायिक (संध्यावन्दन) करना चाहिये । ८४ । सांमायिकके समय पर-वस्तु तथा अन्धान्य समस्त कार्योंसे विरक्त होकर समभाव-पूर्वक दो घ्रासन (फायोत्तर्ग वा पद्मासन) द्वादश (एक एक दिशामें तीन तीन) घावर्त्त और चारों दिशाओंमें चार प्रणति करके त्रिकाल वन्दना (सांमायिक वा संध्यावन्दन) करें ॥ ८५ ॥

दूसरे-पर्वजुष्टयमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशोंके दिन) समस्त प्रकारके आरंभ और भोगोपभोगादिका त्यागकरके उपवास करना चाहिये । ८६ । जिस उपवासमें पांचों इन्द्रियें अपने अपने विषयसे निवृत्त होकर आत्मानें ही स्थिर होंय, किसी विषयमें भी चलायमान न होंय इसप्रकार ब्रह्मेन्द्रियताके साथ चार प्रकारके आहारका त्याग करके समस्त दिन

रात ध्यान स्वाध्यायमें ही बिताया जाय, इसीको भगवानने
उपवास करना कहा है ॥ ८७-८८ ॥

सीमरे-भोग (जो एकवार भोगनेमें आवे) उरभोग
(जो बारवार भोगनेमें आवे) का परिवाण [गिनती]
करके गेषको छोड़ देना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है,
निसमें पुष्पमाला गन्धलेपन वस्त्र तांबूल भूषण स्त्री वस्त्र
सवारी आदिका निन्यपति परिमाण करके व्रतको हृष्ट्या
रखनेवाले मज्जन पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ८९-९०

चौथे--घर पर आवे हुये शारभत्यागी जितेन्द्रिय
उत्तम श्रावक [चुल्लक मल्लक] आदि मुनि अर्निकादि
अतिथिके लिये भक्तिपूर्ण अन्नभोजन मौनवाचकका विभाग
करना अर्थात् दान करके सेवन करना सो अतिथिसंविभाग
है, सो श्रावकमात्रको करना चाहिये । ९१ । जो भक्त पुरुष
है, उनको चाहिये कि कठिनमे दे अन्न निवहा, ऐसे सं-
सारका [भ्रमगता] नाश करनेके अर्थ विनयपूर्ण चार
मकारका शान्ति आशार मुनि अर्निका और श्रावक आदि-
वाके लिये निन्यपति प्रदान किया करें । ९२ । मुनिको
दान देने समय श्रावकको अर्द्धादिक दान करके सप्तगुण-
मदित नवधाभक्तिपूर्ण शीतके साथ पवर्तना चाहिये
क्योंकि बिना भक्तिके दिया हुआ दान फलदायक नहीं
होता है ॥ ९३ ॥

इन १२ अर्थोंके पालनेवाले बुद्धिमान मत्पुरुषोंको

चाहिये कि किसी समयमें अनिवार्य मरणकाल आ जाये तो अपने कृदुंबियोंको पृष्ठ कर सहेखना [सन्यासपूर्वक मरना] धारण करै ॥ ९४ ॥ प्राणांतके समय गुरुजनोंके सम्मुख ज्ञानसहित दर्शन और चारित्रके शुद्ध करनेवाले दोषोंकी आलोचना करके चार प्रसंगके आहार और शरीर से रागभार छोड़ दे ॥ ९५ ॥ जो सुधी पुरुष कपय निदान और निधयान्त्र रहित होकर सन्यासविधिको धारणपूर्वक मरणा करते हैं, वे मनुष्य और देवलोकके सुखोंको भोगकर ०१ भवके भीतर २ मोक्षण्डको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

इसप्रकार श्रावकके द्वादशव्रत जिनेंद्र भगवानने कहे हैं सो जो कोई संसारसागरमें पड़नेके भयसे डरनेवाला इनको धारण करन दे, वह सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त होता है ।

इसके अतिरिक्त जितेंद्रियवृत्ति श्रवक है, सो भू नेत्र हुंकार कलागुलि आदिकमें डगाग करनेका और लोलुपताका त्याग करके व्रतोंको बढ़ानेवाला मोनधारणपूर्वक भाजन करता है तथा ॥ ९८ ॥ जो सुरनरकर चरणपूजित हैं ऐसे निर्दोष पंचपरमेष्ठकी नैवेद्य गन्ध अक्षत दीप धूप पुष्पादिषसे निन्यपूजा करना चाहिये ॥ ९९ ॥

इस पृथ्वीय श्रावकव्रतको जो अतिचाररहित पालन करते हैं वे पुरुष मनुष्य और देवोंकी सम्पदा पाकर निष्प्राप हो निर्वाण पदको प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥ व्रतकी प्रशंसा करनेवाली समस्त पालका चरनेवाली जिनमति यतिकी वाणी

तो द्विगुण विधि करना चाहिये अर्थात् १० वर्ष और दश महीने तक उपवास करना चाहिये, क्योंकि इसप्रकार यदि नहीं किया जाय तो व्रतविधि पूरी कैसे हो ? । २३ ।

चौथे-संगारको (भयभ्रमणको) नष्ट करनेवाले अपष खाहार औषध और सास्त्र इसप्रकार ये चारों दान भी नित्य प्रति देना चाहिये । २४ ।

जीवोंको सबसे अधिक मिय प्राण है, इस कारण जीवोंको रक्षा करना अर्थात् समस्त दानोंमें अभयदान करना ही श्रेष्ठ है, क्योंकि प्राणोंमात्र जो कुछ घंटा रोगमागदि आरंभ करते हैं, सो एकमात्र अपने जीवनको रक्षाके लिये ही करते हैं, इस कारण प्राणरक्षसे अधिक श्रेष्ठ कोई भी दान नहीं हो सकता ॥ २५-२६ ॥ पुरुषोंके धर्म धर्म बान और मोक्ष है, चारों पुरुषोंका आधार जीवन है, सो जिसने जीवनदान दिया, उसने क्या तो नहीं दिया अर्थात् सब कुछ दिया और जिसने प्राण हर लिये उसने बाकी क्या छोड़ा ? सब कुछ हर लिया ॥ २७ ॥ जगत्में सबसे बड़ा भय है, सन्तु मृत्यु भयके बराबर कोई भी अन्य भय नहीं है, इस कारण पुरुषानोंको चाहिये कि जिस प्रकार बने नष्ट हो जीवजन्तु करते हैं ॥ २८ ॥

धर्मदान प्राणोंके लिये मृत्यु का फल नहीं है और संगारकी रक्षा अक्षय्य दिना नहीं होती, इस कारण पुरुषोंको प्राण दान भी छोड़ देना चाहिये ॥ २९ ॥ ॥ २९ ॥

दुर्भिक्ष पड़ता है तो अनेक जन लुधाश्रंति करनेके लिये अपने अतिथय द्वारे बालकश्रोतकको बेच देते हैं, इसका व्यवहार जो है सो पुत्रादिकोंसे भी अधिक प्यारा है ॥ ३० ॥ संसारी जीवोंको इस सर्वनाश भुगारुपी दुःखसे बड़ा और कोई मो दुःख नहीं है, इस कारण जिसने आहार दान दिया उसने क्या तो नहीं दिया ? और आहारको नष्ट करनेवालेने क्या नहीं दण्ड दिया ॥ ३१ ॥ अन्नदान जो है सो अनुभूति को जानि कारि पल बाँधे यश वन निद्रि बुद्धि शय सदय सौदिक देना है, इसी कारण जगतमें दानोपहृष्ट ही सुखी और सुख देवाले होते हैं ॥ ३२ ॥ जो शरीर-रक्षा करने की शक्ति बहाल रखने है, वह शक्त सुखी मनुज मन में रखे ही है, इस कारण योगवद्वि सुनि-येवे अपने मन दिनों को जोड़ अन्न दान ही करवा करते हैं ॥ ३३ ॥

अब जगत में अन्न को देना है, नष्ट करनेवाली मनुज मन में अन्न को नष्ट है, इस कारण दानीगण तपस्वी और दान करनेवाले हैं, जो अन्न को नष्ट करनेवाले विधिपूर्वक मानना है, जो अन्न को नष्ट करनेवाले करते हैं ॥ ३४ ॥ जो अन्न को नष्ट करनेवाले अन्नपूजक ओषध दान देना है, जो अन्न को नष्ट करनेवाले अन्नपूजक ओषध दान देना है, जो अन्न को नष्ट करनेवाले अन्नपूजक ओषध दान देना है ॥ ३५ ॥

जो शरीर दुःख राग मद भस्तर मूर्च्छा काँच लाभ भय

३-जो आशक इन्द्रियरूपी घोड़ोंको दमन करने विर-
धमिय और मित्र शत्रुमें समताभाव रखता हुआ विमर्ष
सामायिक करना है, उसको प्रवीण पुरुषोंने तीसरी साम-
यिक पतिपाका धरक सामायिकी आवश्यक कहा है ॥१५॥

४-जो नर भोगभोग पदार्थोंसे वित्त हटाकर मारम
रहित चारों पक्षोंमें (दो दृष्टी दो चतुर्दशोंके दिन)
हमेश्वर उपवास किया करता है, वही चौथी प्रायश्चित्तमात्र
घातक विद्वानोंका एवम श्रेष्ठो आवश्यक है ॥ १६ ॥

५-जो आशक समस्त जीवोंकी कल्याण करनेमें तत्पर
होकर समस्त प्रकारके सचित्त पदार्थोंको छोड़ मामुक्तजन्म
जठारि, भोजन पान करना है उसको पतिपोंके नाय गण-
पति गवतों पांचवीं अन्तःस्थगतिपाका धरक सचित्त
विमर्ष आवश्यक कहा है ॥ १७ ॥

६-जो नन्दगर्भ ४० व १२० वर्षोंमें बालीसेवनका त्याग
करने, ६० वर्षका भोजन पुनः न करवाने पाने योग्य ठहो-
रनेमें १०० वर्षका जल दिने दुःखपात्रों आवश्यक
कहा है ॥ १८ ॥

७-जो नन्दगर्भ ४० व १२० वर्षोंमें बालीसेवनका त्याग
करने, ६० वर्षका भोजन पुनः न करवाने पाने योग्य ठहो-
रनेमें १०० वर्षका जल दिने दुःखपात्रों आवश्यक
कहा है ॥ १९ ॥

८-जो धर्मात्मा आवश्यक सर्वप्रकारकी जीवहिसाके कार-
णोंको जानकर राग द्वेषादिको मन्द करके सब प्रकारके
आरंभोंको छोड़ देता है, उसको यथार्थ ज्ञानके धारक
पुरुषोंने आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमाका धारक अनारंभी
आवक कहा है ॥ ६० ॥

९-जो आवश्यक अन्कृष्ट कषायरूपी शत्रुओंको मर्दनकर
के जीवहिसाके कारणरूप परिग्रहको जानकर तृणके समान
त्याग कर देता, उसको गणधरोंने नववीं परिग्रहत्याग प्रति-
माका धारक अपरिग्रही आवक कहा है ॥ ६१ ॥

१०-जो गृहकार्योंमें विविध प्रकारके जीवोंको अग्निके
समान तापकारक सम्मति देनेका त्याग कर देता है, उसको
ज्ञानी पुरुष दशवीं अनुमतित्याग प्रतिमाका धारक
अनुमतित्यागी आवक कहते हैं ॥ ६२ ॥

११-जो जितेन्द्रिय धारक अपने अर्थ किये दूर मो-
जनका मन बचन कायने रोगारके मुनियोंके समान अनु-
दिष्ट पानुः भोजन करता है, उसको ग्यारहवीं उदिष्टत्याग
प्रतिमाका धारक उदिष्टत्यागी आवक कहते हैं ॥ ६३ ॥

इसप्रकार कृपसे असादरतिन पदादश पदोंको धारण
कर आश्वासनको प्राप्त करता है, यह दशममुप्यती सुख
सम्प्राप्ति समन्विष्ट हो समस्त कर्मात्मा नष्ट करके सिद्ध
पदको (मोक्षको) प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त समस्त प्रयोगोंमें, धारोंने चन्द्रमाके समान, समस्त

सातों प्रकृतियोंके शमन होनेसे उत्पन्न होता है, उसको
 शामिकसम्यक्त्व कहते हैं. और यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त ही
 रह सक्ता है और इन सातों प्रकृतियोंके कुछ क्षय और कुछ
 शमन होनेसे उत्पन्न होता है उसको पैदकसम्यक्त्व तथा
 मिश्र वा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं ॥ ६९-७० ॥
 जो सम्पगृष्टि जिनमतके तत्त्वोंमें शंका नहि करे (१)
 सांसारिक मुखोंकी बांछा नहि करे (२) घर्मात्मा रोगी
 दरिद्री आदिक जैनोंमें ग्लानि नहि करे (३) कुदेव कुगुरु
 और कुधर्ममें विशुद्धचित्त हो मोहको (अज्ञानभावको) प्राप्त
 न होय [४] संयमी मुनि श्रवकोंके दोषोंको छिपावे (५)
 और अपने तथा उसके परिश्रितोंमें स्थिरता करे (६)
 घर्मात्माओंसे अनुसरित वात्सल्य रखे (७) बहिर्मा
 धर्मकी महिमा [प्रशंसा] बढ़ावे (८) संवेग [संसारसे
 भयमान] होकर [९] वैराग्यरूप [१०] पन्द्रकपाय रहे
 [११] अनादिता करे [१२] अपनेको प्राप्त पुये
 दायोका निन्दार्थ [१३] पंचममेषामें निरूपति भक्ति
 करे [१४] द्वारद्वाररूप से ही अतिगन करनेमें
 अपना इच्छा रखे [१५] मरुत जीवांग पैत्राभाव रखे
 १६ वाग्मिगर्भका [गुणाविवक्ष्य पुरुषोक्ता] देवदेव
 शोभित [१७] विमान चेष्टावालोंमें मधुस्य रह [१८]
 शोभ सांसारिक कदाचारोंसे विरक्त रहे [१९] दरी-दर
 पुरुष वनरूप धान्यके बीजपूत, दानोंका दुर्लभ, मनसा

सुलोकें देनेवाले, विद्वानों हर पूजनीय, सत्यस्यकरी रत्न को
विह्वल (निर्भल) करता है. और उसी पुण्यका जन्म
पशेला करनेयोग्य है ॥ ७१-७५ ॥

[illegible]

८२ ॥ तत्पश्चात् वह पवनवेग मुनि महाराजको नमस्कार-
 पूर्वक कहने लगा कि हे मुने ! आज मेरे समान कोई भी
 धन्य नहीं है, जो नरकरूपी कूपमें पड़ता हुआ आपके वच-
 नरूपी आलम्बनको प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥ जो नर आपके
 वचनोंको सुनता है, वह भी मनवांछित फलको प्राप्त होता
 है तो जो एकचित्त हो आपके वचनोंके अनुसार चलता है
 उसका फल कैसा उत्तम होगा सो कहनेमें कोई भी सपर्य
 नहीं है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य आपके वचनोंको सुनकर कुछ
 भी नहीं करते, ये निश्चय करके मनुष्य नहीं हैं क्योंकि
 रत्नभूमिमें प्राप्त होकर पशु ही खाली हाथों जाता है, मनुष्य
 कदापि खाली हाथ नहीं आता ॥ ८५ ॥ इसप्रकार वह
 पवनवेग निर्दोष वचनोंको कहकर व्रत ममितिवाले मुनिस-
 मूढसहित केवली भगवानको प्रातिपूर्वक नमस्कार करके
 अपने मित्र मनोवेग सहित विजयार्द्ध पर्वतपर अपने घर
 जाता हुआ ॥ ८६ ॥ उस पवनवेगका जैनशर्मावलंबी देख
 कर मनोवेग बहुत ही हर्षित हुआ, सो नीति ही है कि अपने
 किए हुए पारश्वरको मत्त होनेपर ऐन कौन पुरुष है कि
 जिसके हृदयमें प्रसन्नता हो ॥ ८७ ॥ तत्पश्चात् मनो-
 हर आभूषणोंके धारक ये दोनों मित्र चार प्रकारके पवित्र
 श्रावक धर्मको हर्षण का धारण करते हुए परस्पर महा-
 प्रीतिरूपी बन्धनसे अन्तः अन्त चित्तको बांधे हुए सुखसे
 अपना समय बिताने लगे ॥ ८८ ॥

भाषानुवादकर्त्ताका परिचय ।

—:०:—

पद्धतिछंद.

सब देशनमें भारत सुदेश, तहं राजपुताना इक प्रदेश ॥
तामें मरुभूमी है प्रवान, तहं राज्य सु बीकानेर जान ॥ १ ॥
अहो राज्य को नृप बहादुर, श्रीगंगासिंह हजर घर ॥
सा राज्यनाहि नहि इति भीति, राजा स्वप्रजासे करत प्रीति ॥ २ ॥
तहं जसरासर शुभ प्रम एक, जहं बाबू कन्हि जैनी अनेक ॥
सब जैनी जाति खंडेलवाल त में सुवंश याकजीवाल ॥ ३ ॥
ता वंशमाहि इक अमरचंद, तिनके सुन बा भये सुनंद ॥
तिनके इक नानकराम नाम, निवसे सुजानगढ़ नाम धाम ॥ ४ ॥
तिनके सुन अठ भये सुजान, तिनमें अब चार हि वर्तमान ॥
गुरु धनलालजी मति अमद, तिनसे लघुभ्राता रतनचन्द ॥ ५ ॥
तिनके लघु पन्नालाल मान, सबसे नृप नथमल भ्रातजान ॥
तिनमें मैं पन्नालाल नाम, सो गयो मुगदाघाद घाम ॥ ६ ॥
तित श्रीयुत मुन्शी मुकंदराम अरु पण्डित चुन्नीलाल नाम ॥
इन विद्वज्जनके चरणपास, रहिकर विद्या गहि मति प्रकाश ॥ ७ ॥
फिर आयो मुंबई शहर माहि, जहं सज्जन जनकी कमी नाहि ॥
तिनमें पण्डित गोपालदास, रहते ये धन्नालाल पास ॥ ८ ॥
इन सुजन जननका संग पाय, वृपरहस सुना हियद्वये लाय ॥
साकारण मो मति कुछ पवित्र, अनुवाद-रचनमें भइ विचित्र ॥ ९ ॥

